दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

वर्ष नववाँ
अंक पाँचवाँ

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी वकील

श्रावण
२४७९

धन्य है उन सम्यग्दृष्टि को.....

सम्यग्दृष्टि अपने पूर्ण आत्मा को ऐसा मानते हैं कि—अहो! हम तो चैतन्य हैं, यह देह हम नहीं हैं। अपने आत्मा को सिद्ध भगवान से किंचित् कम मानना हमें पसंद नहीं है; हम तो अपने आत्मा को सिद्ध समान परिपूर्ण ही स्वीकार करते हैं। अंतरस्वभाव में अवलोकन करने से कृतकृत्य कर दे—ऐसा हमारा चैतन्य-भण्डार है। अंतरस्वभाव की रुचि द्वारा आठ वर्ष की राजकुमारी भी ऐसा आत्मभान कर लेती है। पूर्वकाल में आत्मा की दरकार किये बिना विषय-कषाय में जीवन बिताया हो, तथापि यदि वर्तमान में रुचि बदलकर आत्मा की रुचि करे तो ऐसा अपूर्व आत्मभान हो सकता है।

[—प्रवचन से]

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

१०१

एक अंक
चार आना

जैन स्वाध्याय मन्दिर : सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

दसलक्षण धर्म अथवा पर्यूषणपर्व

भाद्रपद शुक्ला पंचमी, रविवार ता: १३-९-५३ भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी, मंगलवार ता: २२-९-५३ तक के दस दिन सोनगढ़ में दसलक्षण धर्म अथवा पर्यूषणपर्व रूप से मनाये जायेंगे। इन दिनों में उत्तमक्षमादि दस धर्मों पर पूज्य गुरुदेव के अध्यात्म-प्रवचन होंगे।

जैन अतिथि सेवा समिति की
वार्षिक बैठक

भाद्रपद शुक्ला एकम, बुधवार ता. ९-९-५३ के दिन सायंकाल ५ बजे श्री जैन अतिथि सेवा-समिति की वार्षिक बैठक होगी, उसमें सर्व सभ्यों से उपस्थित रहने के लिये निवेदन है।

नम्र-निवेदन

महानुभाव!

आपको विदित ही है कि अभी तक "आत्मधर्म" अनेकान्त मुद्रणालय मोटा आंकड़िया से मुद्रित होकर प्रकाशित होता था; किन्तु अब वह मुद्रणालय वल्लभ-विद्यानगर [गुजरात] आ गया है; इस्थान-परिवर्तन के कारण श्रावण मास का अंक समय पर प्रगट न हो सका—जिसके लिये हम क्षमाप्रार्थी हैं।

भाद्रपद मास का अंक शीघ्र ही प्रस्तुत कर रहे हैं।

निवेदक

जमनादास माणेकचंद रवाणी

प्रकाशक

आत्मधर्म

श्रावण : २४७९ ☆ वर्ष नववाँ ☆ अंक पाँचवाँ

बाह्य सामग्री पूर्व के पुण्य-पापकर्मों का फल है

अमुक जीव को लक्ष्मी की प्राप्ति हो और अमुक जीव को न हो, अमुक के शरीर में रोग हो और अमुक निरोगी रहे,—इसप्रकार बाह्य में जो लक्ष्मी आदि सामग्री का संयोग-वियोग तथा सरोगता-निरोगतादि होते हैं, उनमें पूर्व के पुण्य का उदय निमित्तरूप है; यदि कोई जीव उस कर्म को निमित्तरूप न माने और कहे कि—'लक्ष्मी इत्यादि की जो असमानता है, वह वर्तमान राजव्यवस्था की कमी के कारण है, तथा सरोगता-निरोगता आहार-विहार के कारण हैं'—तो उसकी यह मान्यता आगम से विरुद्ध है। यहाँ आगम के अनेक आधार देकर यह बात सिद्ध की है कि दरिद्रता या सधनता तथा रोग या निरोगता—इत्यादि बाह्य सामग्री का संयोग-वियोग होने में पूर्व के साता या असाता कर्म का उदय निमित्तरूप है; पूर्व के शुभाशुभ कर्म के उदयानुसार ही बाह्य सामग्री का संयोग-वियोग होता है। इस लेख में दिये गये सभी अवतरण मात्र—'बाह्य सामग्री पूर्व के पुण्य-पापकर्मों का फल है'—यह बात सिद्ध करने के लिये ही दिये गये हैं यह बात पाठकगण ध्यान में रखें।

❀ श्री षट्खण्डागम पुस्तक १, पृष्ठ १०५ में पुण्य-पाप के फल का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

'काणि पुण्य-फलाणि ? तित्थयर-गणधर-रिसि-चक्कवट्टि - बलदेव - वासुदेव - सुर - विज्जाहरिद्धीओ।'

'काणि पाव-फलाणि ? णिरयतिरिय-कुमाणुस-जोणीसु
जाइ - जरा - मरण - वाहि - वेयणादालिद्दादीणि।'

अर्थ : शंका—पुण्य के फल कौन से हैं ?

समाधान : तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, देव और विद्याधरों की ऋद्धियां पुण्य के फल हैं।

शंका : पाप के फल कौन से हैं ?

समाधान : नरक, तिर्यंच और कुमानुष की योनियों में जन्म, जरा, मरण, व्याधि, वेदना और दारिद्र आदि की प्राप्ति पाप के फल हैं।

[ऋद्धियों की प्राप्ति और दरिद्रतादि पुण्य-पाप के फल हैं—ऐसा यहाँ स्पष्ट कहा है।]

— श्री षट्खण्डागम पुस्तक ६, पृष्ठ ३६ में कहते हैं कि—

'दुक्खुवसमहेउसुदव्वसं पादणे तस्स वावारादो' ××× 'ण च सुहदुक्खहेउदव्वसंपादय-मण्णं कम्ममत्थि त्ति अणुवलंभादो।'

अर्थ : दुःख-उपशमन के कारणभूत सुद्रव्यों के सम्पादन में सातावेदनीय कर्म का व्यापार होता है।××× सुख और दुःख के कारणभूत द्रव्यों का सम्पादन करनेवाला दूसरा कोई कर्म नहीं है, क्योंकि वैसा कोई कर्म पाया नहीं जाता।

[यहाँ बाह्य सुद्रव्यों के सम्पादन में सातावेदनीय को कारण कहा है। और बाह्य में सुख-दुःख के कारणरूप द्रव्यों का सम्पादन वेदनीयकर्म के उदय से ही होता है - ऐसा सिद्ध किया है।

❀ ❀ ❀

❀ श्री गोम्मटसार की पीठिका में पृष्ठ १४ में लिखा है कि—

''रे पापी! धन किछू अपना उपजाया तौ न हो है। भाग्यतैं हो है, सो ग्रंथाभ्यास आदि धर्म साधनतैं जो पुण्य निपजै ताही का नाम भाग्य है। बहुरि धन होना है तो शास्त्रभ्यास कीए कैसैं न होगा ? अर न होना है तौ शास्त्राभ्यास न कीए कैसे होगा ? तातैं धन का होना, न होना तौ उदयाधीन है।''

[यहां स्पष्ट कहा है कि धन का होना-न होना उदयाधीन है।]

❀ और वहीं पृष्ठ १५ में लिखा है कि—

विषयजनित जो सुख है, सो दुःख ही है। जातैं विषयसुख है, सो पर निमित्ततैं हो है। पहिले

पीछैं तत्काल आकुलता लिए है, जाके नाश हावेने के अनेक कारण पाइए है, आगामी नरकादि दुर्गतिकौं प्राप्त करणहारा है, ऐसा है तौ भी तेरा बाह्या मिलै नाहीं, पूर्व पुण्यतैं हो है तातैं विषम है।'

[यहाँ विषयजनित सुख की सामग्री पूर्व पुण्य से होती है—ऐसा स्पष्ट कहा है।]

❀ श्री गोम्मटसार गाथा १५२ तथा उसकी टीका में कहते हैं कि—

''जातिजरामरणभयाः संयोगवियोगदुःखसंज्ञाः।
रोगादिकाश्च यस्यां न संति सा भवति सिद्धगतिः ॥१५२॥''

''कर्मवशाज्जीवस्य×××क्लेशकारणानिष्टद्रव्यसंगमः संयोगः। सुखकारणेष्टद्रव्यापायो वियोगः एतेभ्यः समुत्पन्नानि आत्मनो निग्रहरूपाणि दुःखानि।××× रोगादिकाश्च-रोग-मानभंग-वधबंधादि-विविधवेदनाश्च यस्यां मतौ न संति तत्तत्कारणकृत्स्नकर्मविप्रमोक्षे सति न जायंते सा सिद्धगतिः।'' (जीवकांड, पृष्ठ ३७५)

[यहाँ कहा है कि कर्म के वश जीव को क्लेश के कारणरूप अनिदष्ट द्रव्य का संयोग तथा सुख के कारणरूप इष्ट द्रव्य का वियोग होता है; और सिद्धदशा में रोग-मानभंग-वध-बंधनादि के कारणरूप कर्म का क्षय हो जाने से रोगादि नहीं है;—इसप्रकार यहाँ रोगादिक अनिष्ट सामग्री का संयोग होने में और इष्ट का वियोग होने में कर्म का कारणपना बतलाया है।]

❀ 'दरिद्री लक्ष्मीवान इत्यादिक विचित्रता कर्म बिना नाहीं संभवै है।' [श्री गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा २ की टीका : पृष्ठ ३]

[दरिद्रता और सधनता इत्यादि विचित्रता होने में कर्म निमित्त है—ऐसा यहाँ बतलाया है।]

❀ श्री गोम्मटसार कर्मकाण्ड पृष्ठ ९०२-९०३ के फुटनोट में निम्नानुसार कहा है—

(१) ''×××सयोगकेवलिनींद्रिय विषयसुखकारण-सातवदेनीयबंध उदयात्मकः स्यात्×××''

[यहाँ सातावेदनीय को इन्द्रिय-विषयसुख का कारण कहा है।]

(२) ''मोहनीयोदयबलाधानरहित-सातवेदोदयस्य बहिर्विषय सनिधीकरणसामर्थ्यमेव स्यान्न तद्विषयसुखसंवेदनोत्पादक सामर्थ्यं।''

[यहाँ बाह्य विषयों के सन्निधिकरण में सातावेदनीय के उदय का सामर्थ्य बतलाया है।]

(३) ''सातवेदनीयोदय संजनितेन्द्रियविषयकवलाहारादिभ्यो×××''

[यहाँ इन्द्रिय-विषयों को सातावेदनीय के उदयजनित कहा है।]

❀ श्री गोम्मटसार-कर्मकाण्ड गाथा ८१० में कहते हैं कि—

''प्राणवधादिषु रतो जिनपूजामोक्षमार्ग विघ्नकरः।
अर्जयति अंतरायं न लभते यदीप्सितं येन।''

''जो जीव आपकरि वा अन्यकरि करी एकेन्द्रीय आदि प्राणीनिकी हिंसा तीहिंविषैं प्रीतिवंत होइ, जिनेश्वर पूजा अर रत्नत्रय की प्राप्तिरूप मोक्षमार्ग तिसविषैं आपकैं वा अन्य जीवकैं विघ्न करै, सो जीव अंतराय कर्म उपजावे है। जाके उदय आवनेकरि वांछित न पावै है।

[यहाँ वांछित प्राप्ति न हो उसमें अंतरायकर्म के उदय को निमित्त कहा है।]

❀ ❀ ❀

❀ श्री समयसार गाथा ८४ की टीका में कहते हैं कि—

'पुद्गलकर्मविपाकसंपादितविषयसन्निधि×××'

अर्थ : 'पुद्गल कर्म के उदयकर उत्पन्न की गई जो विषयों की समीपता×××'

(समयसार पृष्ठ १३९)

❀ गाथा १३२ से १३६ की टीका में जयसेनाचार्य कहते हैं कि—

'उदयागतेषु द्रव्यप्रत्यये यदि जीवः स्वस्वभावं मुक्त्वा रागादिरूपेण भावप्रत्ययेन परिणमति तदा बंधो भवतीति नैवोदयमात्रेण घोरोपसर्गेपि पांडवादिवत्' (समयसार पृष्ठ १९६)

[बाहर के घोर उपसर्ग कर्म के उदय के कारण होते हैं—ऐसा इस कथन से सूचित होता है।]

❀ गाथा १८४-१८५ की टीका में जयसेनाचार्य कहते हैं कि—

'तीव्र परीषहोपसर्गेण कर्मोदयेन संतप्तोऽपि×××'

[यहाँ बाह्य में तीव्र परीषह और उपसर्गों का कर्म के उदय से होना कहा है।]

(समयसार पृष्ठ २६२)

❀ श्री समयसार गाथा २२५ में कहते हैं कि —

एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं
तो सोवि देह कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥२२५॥

अर्थ : इसी तरह जीव नामा पुरुष सुख के लिये कर्मरूपी रज को सेवन करता है तो वह कर्म भी उसे सुख के उपजानेवाले अनेक प्रकार के भोगों को देता है।

❀ गाथा २२४ से २२७ की टीका में जयसेनाचार्य कहते हैं कि—

'कोऽपि जीवोऽभिनवपुण्यकर्मनिमित्तं भोगाकांक्षानिदानरूपेण शुभकर्मानुष्ठानं करोति सोऽपि पापानुबंधिपुण्यराजा कालांतरे भोगान् ददाति।' (पृ. ३१५)

'पुण्यानुबंधि पुण्यकर्म भवांतरे तीर्थंकर-चक्रवर्ती-बलदेवाद्यभ्युदय-रूपेणोदयागतमपि×××' (पृष्ठ ३१६)

[यहाँ पुण्य बाह्य सामग्री देता है-ऐसा कहा है।]

❀ गाथा २७५ की टीका में कहते हैं कि—

'...अहमिंद्रादिपदवीकारणत्वादिति मत्वा भोगाकांक्षारूपेण पुण्यरूपं धर्म×××'

[समयसार, पृष्ठ ३६७]

[अभव्य जीव जिस धर्म का श्रद्धान करता है, उसका वर्णन करते हुए यहाँ कहा है कि वह अहमिन्द्रादि पदवी के कारणरूप ऐसे पुण्यरूप धर्म का श्रद्धान और आचरण करता है।]

❀ गाथा ३२४ से ३२७ की टीका में जयसेनाचार्य कहते हैं कि—

''कोऽपि जीवः पूर्वं मनुष्यभवे जिनरूपं गृहीत्वा भोगाकांक्षानिदानबंधेन पापानुबंधि पुण्यं कृत्वा स्वर्गे समुत्पद्य तस्मादागत्य मनुष्यभवे त्रिखंडाधिपतिरर्द्धचक्रवर्ती भवति...''

[यहाँ अर्ध चक्रवर्तीपने के वैभव की प्राप्ति में पुण्य को कारण कहा है।]

(समयसार पृष्ठ ४३०)

❀ पं० राजमलजी समयसार कलश-टीका में कहते हैं कि—

[पृष्ठ १६३] 'कर्म के उदय करै छे नानाप्रकार सामग्री×××'

[पृष्ठ १६४] 'कर्म जनित सामग्री××'

[पृष्ठ १६६] 'कर्म कहतां कर्म के उदयजनित अनेकप्रकार भोग सामग्री×××'

[पृष्ठ १७१] 'तत्फल कहतां कर्मजनित सामग्री×××'

[पृष्ठ १७२] 'जेतो कांइ साता असातारूप कर्म को उदय तिहितैं जो कुछ नीका विषय अथवा अनिष्ट विषयरूप सामग्री सो सम्यग्दृष्टि के सर्व अनिष्टरूप छे। कोई जीव को अशुभ कर्म के उदय रोग, शोक, दालिद्र आदि होइ छे, जीव छोडिवाको घनो ही करे छे, परि अशुभ कर्म के उदय नहीं छूटै छे, ××× तथा सम्यग्दृष्टि जीव को पूर्व अज्ञानपरिणाम करि बांध्या छे सातारूप असातारूप कर्म तिहके उदय अनेक प्रकार विषय सामग्री होई छे।'

[पृष्ठ १७५] 'जीव को साता कर्म कै उदय अनेक प्रकार इष्ट भोगसामग्री छे, असाता कर्म कै उदय अनेक प्रकार रोग, शोक, दरिद्र, परीषह, उपसर्ग इत्यादि अनिष्ट सामग्री होइ छे×××'

[पृष्ठ १७८] 'जो साता असाता कर्म कै उदय सुख-दु:खरूप वेदना सो जीव को स्वरूप न छे तिहितैं सम्यग्दृष्टि जीव को रोग उपजिवाको भय न होइ।'

(पृष्ठ १९५) 'सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-कर्मोदयान्मरणजीवितदु:खसौख्यम्।'

(समयसार कलश १६८)

''मरण' कहतां प्राणघात, 'जीवित' कहतां प्राणरक्षा, 'दु:खसौख्यं' कहतां इष्ट-अनिष्ट संयोग इसो जो 'सर्वं' कहतां सर्व जीवराशि कहु होइ छे, जावंत 'सदा एव' कहतां सर्व काल होइ छे, 'नियतं' कहतां निहिचासों, 'स्वकीय कर्मोदयात् भवति' कहतां जैनै जीव आपणा परिणाम विशुद्ध अथवा संक्लेशरूप तिहिकरि पूर्व ही बांध्या छे जे आयु:कर्म्म अथवा साताकर्म्म अथवा असाताकर्म्म तिहि कर्म के उदयकरि तिहि जीव को मरण अथवा जीवन अथवा दु:ख अथवा सुख होइ छे इसो निहचो छे, बात इन मांहे धोखो कांइ नाहीं।''

(पृष्ठ १९५) ''जिसके असाता का उदय होगा वह दु:ख, और जिसके साता का उदय होगा वह सुख भोगेगा। दूसरा जीव मात्र बाहरी निमित्तकारण हो जाय तो हो जाय, मूल कारण कर्मों का उदय है।''

❀ ❀ ❀

❀ श्री प्रवचनसार गाथा ७२ की टीका तथा भावार्थ में कहा है कि—

''यदि शुभोपयोगजन्यसमुदीर्णपुण्यसंपदस्त्रिदशादयोऽशुभोपयोगजन्यपर्यागतपातकापदो वा नारकादयश्च×××''

(अर्थ:) ''यदि शुभोपयोगजन्य उदयगत पुण्य की संपदावाले देवादिक (शुभोपयोगजन्य पुण्य के उदय से प्राप्त होनेवाली ऋद्धिवाले देवादिक) और अशुभोपयोगजन्य उदयगत पाप की आपदावाले नरकादिक×××''

(भावार्थ:) ''शुभोपयोगजन्य पुण्य के फलरूप से देवादिक की संपदाएँ प्राप्त होती हैं और अशुभोपयोगजन्य पाप के फलरूप से नारकादि की आपदाएँ प्राप्त होती हैं।''

❀ श्री प्रवचनसार गाथा १९३ वीं की टीका में कहते हैं कि—

आत्मा को देह-धनादिक परवस्तु का संयोग हेतुवाला और परत:सिद्ध है; देह-धनादिक

की उत्पत्ति में कोई न कोई निमित्त होता है, इसलिये वे परत:सिद्ध हैं।

❀ ❀ ❀

❀ श्री नियमसार के २९वें कलश में कहते हैं कि—

'नानानूननराधिनाथविभवानाकर्ण्य चालोक्य
च त्वं क्लिश्नासि मुधात्र किं जडमते पुण्यार्जितास्ते ननु।
तच्छक्तिर्जिननाथपादकमलद्वन्दाचार्यनायामियं
भक्तिस्ते यदि विद्यते बहुविधा भोगा: स्युरेते त्वयि॥

(अर्थ:) नराधिपतियों के अनेकविध महा वैभवों को सुनकर तथा देखकर हे जड़मति? तू व्यर्थ ही क्यों दु:खी होता है! वे वैभव वास्तव में पुण्य से प्राप्त होते हैं। वह (पुण्योपार्जन की) शक्ति जिननाथ के पादपद्मयुगल की पूजा में है; यदि तुझे उन जिनपादपद्मों की भक्ति हो तो वे बहुविध भोग तुझे (अपनेआप) होंगे।

❀ और गाथा १५७ की टीका में कहते हैं कि—

'कश्चिदेको दरिद्र: क्वचित् कदाचित् सुकृतोदयेन निधिं लब्ध्व×××' अर्थात् 'कोई एक दरिद्र मनुष्य क्वचित् कदाचित् पुण्योदय से निधि को प्राप्त करके×××'

[लक्ष्मी और वैभव पुण्योदय से प्राप्त होते हैं—ऐसा यहाँ स्पष्ट कहा है।]

❀ ❀ ❀

❀ श्री पंचास्तिकाय में कहते हैं कि—

''×××व्यवहारेण, शुभाशुभकर्म्मसंपादितेष्टानिष्टविषयाणां भोक्तृत्वाद्भोक्ता''—''व्यवहार से, शुभ अशुभ कर्म के उदय से उत्पन्न जो इष्ट-अनिष्ट विषय तिनका भोक्ता है।''

(गाथा २७ टीका)

(यहाँ बाह्य इष्ट-अनिष्ट सामग्री को शुभाशुभ कर्म से सम्पादित कहा है।)

❀ ''व्यवहारेणेष्टानिष्टविषयाणां निमित्तमात्रत्वात्पुद्गलकाया: सुखदु:खरूपं फलं प्रयच्छन्तिं।×××''व्यवहारेण द्रव्यकर्मोदयापादितेष्टानिष्ट विषयाणां भोक्तृत्वात्तथाविधं फलं भुंजते'' (गाथा ६७ टीका)

अर्थ—व्यवहार कर शुभ-अशुभ जो बाह्य पदार्थ हैं, उनको भी कर्म निमित्तकारण हैं, सुख-दु:ख फल को देते हैं। ×××जीव, व्यवहारकर द्रव्यकर्म के उदय से प्राप्त हुये जो शुभ अशुभ पदार्थ तिनको भोगते हैं।

(यहाँ बाह्य इष्ट-अनिष्ट सामग्री की प्राप्ति में शुभ-अशुभ कर्म को निमित्त कहा है।)

❀ ❀ ❀

❀ श्री रयणसार की २९ वीं गाथा में कहते हैं कि—

दाणीणं दालिद्दं लोहीणं किं हवेइ महाइसरियं।
उहयाणं पुव्वजियकम्मफलं जाव होइ थिर॥

अर्थ :—दानी पुरुषों को दरिद्रता और लोभी पुरुषों को महान विभव की प्राप्ति होना अपने-अपने पूर्वजनित कर्मों का फल है। इसलिये भव्य जीवों को चाहिए कि जबतक पूर्व कर्मों के फल का उदय है, तब तक अपनी अवस्था पर हर्ष या ग्लानि नहीं करे और न यह विचार करे कि मैं धर्मसेवन करते हुये भी दरिद्र क्यों हो गया और पापी-पुरुष धनवान क्यों हो गये ?

❀ ❀ ❀

❀ श्री परमात्मप्रकाश में कहते हैं कि—

मं पुणु पुण्णइँ भल्लाइँ णाणिय ताइँ भणंति।
जीवहँ रज्जइँ देवि लहु दुक्खइँ जाइँ जणंति॥५७॥

(अर्थः) फिर वे पुण्य भी अच्छे नहीं हैं, जो जीव को राज देकर शीघ्र ही नरकादि दुःखों को उपजाते हैं—ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं॥

(टीकाः) ''पुण्यकर्माणि जीवस्य राज्यानि दत्त्वा लघु शीघ्रं दुःखानि जनयन्ति।''

(अर्थ :) ''वे निदानबंध से उपार्जन किये पुण्यकर्म जीव को दूसरे भव में राजसम्पदा देते हैं। उस राज्यविभूति को अज्ञानी जीव पाकर विषय-भोगों को छोड़ नहीं सकता, उससे नरकादिक के दुःख पाता है।'' (-परमात्म-प्रकाश पृष्ठ १९८)

❀ **पुण्णेण होइ विहवो विहवेण मओ मऐण मइ-मोहो।**
मइ-मोहेण य पावं ता पुण्णं अम्ह महा होउ॥६०॥

(अर्थ-) पुण्य से घर में धन होता है और धन से अभिमान, मान से बुद्धिभ्रम होता है, बुद्धि के भ्रम होने से (अविवेक से) पाप होता है, इसलिये ऐसा पुण्य हमारे न होवे।

''जो मिथ्यादृष्टि संसारी अज्ञानी जीव है, उसने पहले उपार्जन किये भोगों की वांछारूप पुण्य उसके फल से प्राप्त हुई घर में सम्पदा होने से अभिमान होता है।×××'

संस्कृत टीका - 'पुण्येन विभवो विभूतिर्भवति' (-परमात्म-प्रकाश, पृष्ठ २०१)

❀ ❀ ❀

— श्री तत्त्वार्थसूत्र में कहते हैं कि—

वेदनीये शेषाः ॥९-१६॥

अर्थः—शेष ग्यारह परीषह अर्थात् क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल परीषह वेदनीय कर्म के उदय में होती हैं॥

❀ ❀ ❀

❀ ''अचिंत्य विभूतियुक्त अर्हंतपद का देनेवाला जो कर्म है, वह तीर्थंकर नामकर्म है''

(राजवार्तिक भाषा, पृष्ठ ८७८)

❀ ''चक्रधरपना आदि विशेष उच्चगोत्र आदि पुण्यकर्मों के उदय के फलरूप हैं....''

(राजवार्तिक भाषा, पृष्ठ ८७९)

❀ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहते हैं कि—

जा सासया ण लच्छी चक्कहराणं पि पुण्यवंत्ताणं।
सा किं बंधेइ रइं इयरजणाणं अपुण्णाणं॥१०॥

अर्थ : जो लक्ष्मी: कहिये संपदा पुण्यकर्म के उदयसहित जो चक्रवर्ती, तिनके भी शाश्वती नाहीं तो अन्य जे पुण्यउदयरहित तथा अल्प पुण्यसहित जे पुरुष हैं, तिनसहित कैसे राग बांधे ?- अपितु नाहीं बांधे।

❀ गाथा १९ के अर्थ में कहते हैं कि—''जो पुरुष पुण्य के उदयकरि बधती जो लक्ष्मी ताहि निरंतर धर्मकार्यनि विषै दे है, सो पुरुष पंडितनि करि स्तुति करनेयोग्य है''

❀ गाथा ५७ में कहते हैं कि—

सत्तू वि होदि मित्तो मित्तो वि य जायदे तहा सत्तू।
कम्मविवायवसादो एसो संसारसब्भावो॥५७॥

अर्थ :—कर्म के उदय के वशतें वैरी होय सो तो मित्र होय जाय है, बहुरि मित्र होय सो वैरी होय जाय है, यहु संसार का स्वभाव है। (भावार्थ :) पुण्यकर्म के उदय तैं वैरी भी मित्र होय जाय अर पापकर्म के उदयतैं मित्र भी शत्रु होय जाय।

❀ आगे ३१९ वीं गाथा में कहते हैं कि—''कोई कहै कि व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी—उपकार, तिनिकूं पूजने-वन्दने कि नाहीं ?'' ताकूँ कहै हैं—

ण य कोवि देदि लच्छी ण कोवि जीवरस कुणइ उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि॥३१९॥

अर्थः—या जीवकूं कोई व्यन्तर आदि देव लक्ष्मी नाहीं देवै हैं बहुरि कोई अन्य उपकार भी नाहीं करै हैं। जीव के पूर्वसंचित शुभ-अशुभ कर्म हैं, ते ही उपकार तथा उपकार करैं हैं।

भावार्थः—जो पूर्वकर्म शुभाशुभ संचित है सो ही या प्राणीकैं सुख-दुःख, धन-दरिद्र, जीवन-मरनकूं करै है।

❀ **भत्तीए पुज्जमाणो वितरदेवो वि देदि जदि लच्छी।**
तो किं धम्मं कीरदि एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी॥३२०॥

अर्थ :—सम्यग्दृष्टि ऐसैं विचारै जो व्यंतरदेव ही भक्ति करी पूज्या हुवा लक्ष्मी दे है तो धर्म कहो कूँ कीजिये ?

[यहाँ 'धर्म' कहने से पुण्य समझना चाहिए। व्यंतरदेव लक्ष्मी नहीं देते किन्तु पुण्य से ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है—ऐसा बतलाने के लिये यह कथन है।]

भावार्थ में कहते हैं कि :—"सम्यग्दृष्टि तो मोक्षमार्गी है, संसार की लक्ष्मीकूं हेय जाने है ताकी वांछा ही न करै है, जो पुण्य का उदयतैं मिले तो मिलो, न मिले तो मति मिलौ।"

❀ आगे ४२७ वीं गाथा में कहते हैं कि—

जीव लक्ष्मी चाहैं हैं सो *धर्म बिना कैसे होय—

लच्छिं वंछेइ णरो णेव सुधम्मेसु आयरं कुणइ।
बीएण विणा कुत्थ वि किं दीसदि सस्सणिप्पत्ति॥४२७॥

अर्थः—यह जीव लक्ष्मीकूं चाहैं है बहुरि जिनेन्द्र का कह्या मुनि-श्रावक धर्मविषै आदर-प्रीति नाहीं करै है तौ लक्ष्मी का कारण तौ धर्म है, तिस बिना कैसें आवै ? जैसे बीज बिना धान्य की उत्पत्ति कहूँ दीखै है ?—नाहीं दीखै है।

भावार्थः—बीज बिना धान्य न होय तैसैं धर्म बिना सम्पदा न होय यह प्रसिद्ध है।

[*यहाँ धर्म कहने से पुण्य समझना चाहिए।]

❀ गाथा ४३२ में कहते हैं कि—

अलियवयणं पि सच्चं उज्जमरहिए वि लच्छिसंपत्ती।
धम्मपहावेण णरो अणओ वि सुहंकरो होदि॥४३२॥

धर्म के प्रभावकरि जीव के झूंठ वचन भी सत्य वचन होय हैं, बहुरि उद्यमरहित के भी लक्ष्मी की प्राप्ति होय है, बहुरि अन्यायकार्य भी सुख का कारणहारा होय है।

भावार्थ :—''जो पूर्वे धर्म सेया होय तो ताके प्रभावतैं×××उद्यम बिना भी संपत्ति मिलै।''

[यहाँ भी धर्म कहने से पुण्य समझना चाहिए।]

❀ ❀ ❀

❀ श्री भगवती आराधना में कहते हैं कि—

''या लक्ष्मी कोई कुलवान में, रूपवान में, बलवान में, शूरवीर में, कृपण में, कायर में, अकुलीन में, पूज्य में, धर्मात्मा में, पराक्रमी में, अधर्मी में कहूँ में नहीं रमे है, पूर्व जन्म में जे पुण्य किये तिनके प्राप्त होई×××'' [पृष्ठ ५४७-८]

❀ (गाथा १७३१) **पावोदएण अत्थो हत्थं पत्तो वि णस्सदि णरस्स।**
दूरादो वि सपुण्णस्स एदि अत्थो अयत्तेण॥

अर्थ:—इस जगत में मनुष्य के पाप का उदयकरि हस्त में प्राप्त भया हूँ जो अर्थ कहिये धन, सो नाशकूं प्राप्त होय है। अर पुण्यवान पुरुष कै पुण्यकर्म के उदयकरि बिना यत्न ही अति दूर तैं धन आय प्राप्त होय है॥

भावार्थ:—लाभांतराय का क्षयोपशम होय तदि जतन बिना ही अनेक दूरि क्षेत्रतेंहू अचिंत्य धन आय प्राप्त होय है। अर जब लांभातराय असाताकर्म का तीव्र उदय होय, तब बड़े जतनकरि रक्षा करते-करते हुए हस्त में ध्यां धन हू नष्ट होय है॥

❀ (गाथा १७३३) **पुण्णोदएण कस्सइ गुणे असंते वि होइ जसकित्ती।**
पाओदएण कस्सइ सगुणस्स वि होइ जसघाओ॥

अर्थ:—पुण्य के उदयकरिके कोउके गुण नहीं होते हू जगत में जसकीर्ति प्रकट होय है अर गुणसहित हू कोउ के पाप के उदयकरिके जसका नाश होइ अपजस प्रकट होय है॥

❀ (गाथा १७३४-५) **णिरुवक्कमस्स कम्मस्स फले समुवट्ठिदंमि दुक्खंमि।**
जादि जरामरणरुजा चिंताभयवेदणादीए॥
जीवाण णत्थि कोई ताणं सरणं च जो हविज्ज इदं।
पायालमदिगदो वि य ण मुच्चइ सकम्मउदयम्मि॥

अर्थ:—उदय आये पीछे जाका इलाज नहीं ऐसा कर्म का फल जो जन्म, जरा, मरण, रोग,

चिंता, भय, वेदना, दु:ख इनकूं प्राप्त होते जीवनिके कोउ रक्षा करनेवाला शरण नहीं है, अपने बंधनरूप किये कर्मनिके उदय होतें पाताल में प्राप्त हुआ हू नहीं छूटत है ॥

भावार्थ:—पाताल में धसेगा तिसकूंहू कर्म का फल जो दु:ख जन्म मरण जरा रोग शोक भय वेदना जाइ प्राप्त होंयगे ॥

❀ (गाथा १७४२) **रोगाणं पडिगारो णत्थि य कम्मे णरस्स समुदिण्णे।**
रोगाणं पडिगारो होदि हु कम्मे उवसमंते॥

(अर्थ:) मनुष्य के असातावेदनीय कर्म की उदीरणा होय तदि रोगनि का इलाज नहीं होय है, जिस काल असातावेदनीय कर्म का उपशम होय तिसकाल औषधादिकनिकरि रोग का इलाज होय है।

❀ (गाथा १७४३)

विज्जाधरा य बलदेव-वासुदेवा य चक्कवट्टी वा।
देविंदा वि ण सरणं कस्सइ कम्मोदए होंति॥

(अर्थ:) अशुभकर्म का उदय होइ तब विद्याधर बलदेव वासुदेव चक्रवर्ती तथा देवेन्द्र हू कोउ के शरण नहीं हैं, रक्षक नहीं हैं। अशुभकर्म का उपशम होई तथा पुण्यकर्म का उदय होइ तदि समस्त रक्षक होइ हैं ॥

❀ (गाथा १७४८)

रोगादि वेदणाओ वेदयमाणस्स णिययकम्मफलं।
पेच्छंता वि समक्खं किंचिवि ण करंति से णिययां॥

(अर्थ:) अपने कर्म का फल जो रोगादिक वेदना तिनकूं भोगता जीव के अपना निजमित्र कुटुंवादिक प्रत्यक्ष देखता हूँ किंचित् दु:ख दूरि नहीं करि सके हैं, तो परलोक में कौन सहायी होगयगा ? एकाकी नरकादिकन मैं कर्म का फल कूं भोगेगा।

❀ (गाथा १७५२)

जो पुण धम्मो जीवेण कदो सम्मततचरणसुदमइओ।
सो परलोए जीवस्स होइ गुणकारकसहाओ॥

(अर्थ:) बहुरि इस जीव ने जो सम्यक्त्व चारित्र श्रुतज्ञान का अभ्यासमय धर्म किया है सो परलोक में जीव के गुणकारक सहायी होय है। इस धर्म बिना कोउ ही अपना सहायी हितू नहीं है।

धर्म के सहायतैं (अर्थात् धर्म के साथ में होनेवाले पुण्य से) स्वर्ग के महर्द्धिक देव तथा अहमिंद्रपणा, इंद्रपणा, तीर्थंकरपणा, चक्रीपणा, सुदंर कुल, जाति, रूप, बल, विद्या, जगत में पूज्यता ये समस्त प्राप्त होय हैं॥

❀ ❀ ❀

❀ श्री पद्मनन्दि पंचविंशतिका में प्रथम अधिकार की १८१ वीं गाथा में कहते हैं कि—

यत् षटखंडमही नवोरुनिधयो द्विःसप्त रत्नानि यत्-
तुङ्गा यद्द्विरदा रथाश्च चतुराशीतिश्च लक्षाणि यत्।
यच्चाष्टादश कोटयश्च तुरगा योषित्सहस्त्राणि यत्
षट्युक्ता नवतिर्यदेकविभुता तद्धाम धर्म प्रभोः॥१८१॥

(अर्थः) वह तो छै खंड की पृथ्वी और वे बड़ी बड़ी नौ निधि तथा वे समस्त सिद्धि के करनेवाले चौदह रत्न और वे चौरासी लाख बड़े-बड़े हाथी तथा विमान के समान चौरासी लाख बड़े-बड़े रथ और वे अठारह करोड़ पवन के समान चंचल घोड़े तथा वे देवांगना के समान छानवें हजार स्त्रियाँ तथा वह इन समस्त विभूतियों का चक्रवर्तीपना इत्यादि समस्त विभूति धर्म के प्रताप से ही मिलती है, इसलिये भव्यजीवों को ऐसे धर्म की आराधना अवश्य करनी चाहिए।

[यहाँ धर्म कहने से उसके साथ के विशिष्ट पुण्य समझना चाहिए; उसके प्रताप से ही चक्रवर्ती का वैभव आदि विभूति की प्राप्ति होती है—ऐसा यहाँ कहा है।]

❀ गाथा १८४ में कहते हैं कि—

जन्मोच्चैः कुल एव सम्पदधि के लावण्यवारां निधि-
र्नीरोगं वपुरायुरादि सकलं धर्माद्ध्रुवं जायते॥

❀ ❀ ❀

संपदाकर अधिक उत्तम कुल में जन्म तथा लावण्य और निरोग शरीर तथा आयु आदि समस्त बात निश्चय से धर्म के प्रताप से ही मिलती है।

[यहाँ भी उपरोक्त गाथानुसार धर्म कहने से पुण्य समझना चाहिए।]

❀ पद्मनन्दि पंचविंशतिका में धर्मोपदेश अधिकार के १८५ वें श्लोक में कहते हैं कि—

शौर्यत्यागविवेकविक्रमयशः सम्पत्सहायादयः
सर्वे धार्मिकमाश्रयन्ति न हितं धर्मं विना किंचन॥

(अर्थः) ×××वीरत्व दान विवेक विक्रम कीर्ति सम्पत्ति सहाय आदिक वस्तुएँ स्वयमेव आकर धर्मात्मा का आश्रय कर लेती हैं, किन्तु धर्म के बिना कोई भी वस्तु नहीं मिलती, इसलिये जो मनुष्य वीरत्वादि वस्तुओं को चाहते हैं, उनको चाहिये कि वे निरंतर धर्म करें, जिससे बिना परिश्रम से वे वस्तुएँ मिल जायें॥

[धर्म के साथवाले पुण्य से बाह्य इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति होती है—ऐसा यहाँ समझना चाहिए।]

❀ श्लोक १८६ में कहते हैं कि—

सौभागीयसि कामिनीयसि सुतश्रेणीयसि श्रीयसि
प्रासादियसि चेत्सुखीयसि सदा रूपीयसि प्रियसि।
यद्वानन्तसुखामृताम्बुधिपरस्थानीयसीह ध्रुवं
निर्धूताखिलदुःखदापदिसुहृद्धर्मे मतिर्धार्यताम्॥

(अर्थः) जो तुम सौभाग्य की इच्छा करते हो और कामिनी की अभिलाषा करते हो तथा बहुत से पुत्रों के प्राप्त करने की इच्छा करते हो और जो यदि तुम्हारे उत्तम लक्ष्मी के प्राप्त करने की इच्छा है या उत्तम मकान पाने की इच्छा है अथवा यदि तुम सुख चाहते हो तथा उत्तमरूप के मिलने की इच्छा करते हो और समस्त जगत के प्रिय बनना चाहते हो अथवा जहाँ पर सदा अविनाशी सुख की राशि मौजूद है, ऐसे उत्तम मोक्षरूपी स्थान को चाहते हो तो तुम नाना प्रकार के दुःखों को देनेवाली आपत्तियों के दूर करनेवाले जिन भगवान कर बताये हुवे धर्म में ही अपनी बुद्धि को स्थिर करो—धर्म का ही आराधन करो॥

(भावार्थः) सर्व संपदा तथा सुख को देनेवाला और समस्त आपदा तथा दुःखों को दूर करनेवाला एक सच्चा धर्म ही है।

❀ श्लोक १८७ में कहते हैं कि—

संछन्नं कमलैर्मरावपि सरः सौधं वनेष्वुन्नतं कामिन्यो
गिरिमस्तकेऽपि सरसाः साराणि रत्नानि च।
जायन्तेऽपिचलेपकाष्टघटिताः सिद्धिप्रदा देवताः
धर्मश्चेदिह वांछितं तनुभृतां किं किं न सम्पद्यते॥

(अर्थः) यद्यपि मरुदेश निर्जन कहा जाता है परन्तु धर्म के प्रभाव से मारवाड़ में भी मनोहर

कमलोंकर सहित तालाब हो जाते हैं; और वन में मकानादि कुछ भी नहीं होते परन्तु धर्म के प्रताप से वहाँ पर भी विशाल घर बन जाते हैं, उस ही प्रकार यद्यपि निर्जन पहाड़ में किसी भी मनोज्ञ वस्तु की प्राप्ति नहीं होती तो भी धर्मात्मा पुरुषों को धर्म की कृपा से वहाँ पर भी मन को हरण करनेवाली स्त्रियों की तथा उत्तम-उत्तम रत्नों की प्राप्ति हो जाती है; और यद्यपि चित्राम के तथा काठ के बनाये हुवे देवता कुछ भी नहीं दे सकते तो भी धर्म के माहात्म्य से वे भी वांछित पदार्थों को देनेवाले हो जाते हैं; विशेष कहां तक कहा जाय ? यदि संसार में धर्म है तो जीवों को कठिन से कठिन वस्तु की प्राप्ति भी बात की बात में हो जाती है। इसलिये भव्य जीवों को सदा धर्म का ही आराधन करना चाहिये।

❀ श्लोक १८८ में कहते हैं कि—

दुरादभीष्टमभिगच्छति पुण्ययोगात् पुण्याद्विना करतलस्थमपि प्रयाति।
अन्यत् परं प्रभवतीह निमित्तमात्रं पात्रं बुधा भवत निर्मलपुण्यराशेः॥

(अर्थः) पुण्य के उदय से दूर रही हुई भी वस्तु अपने आप आकर प्राप्त हो जाती है किंतु जब पुण्य का उदय नहीं रहता, तब हाथ में रखी हुई भी वस्तु नष्ट हो जाती है। यदि पुण्य-पाप से भिन्न कोई दूसरा पदार्थ सुख-दुःख का देनेवाला है तो एक निमित्तमात्र है अर्थात् पुण्य-पाप ही सुख-दुःख का देनेवाला है। इसलिये ग्रंथकार कहते हैं कि भव्य जीवों को चाहिये कि वे निर्मल पुण्य के पात्र बनें॥

(भावार्थ) ×××सुख तथा दुःख का देनेवाला अथवा भला-बुरा करनेवाला एक पुण्य तथा पाप ही है॥

❀ श्लोक १८९ में आचार्यदेव कहते हैं कि—

कोप्यंधोऽपि सुलोचनोऽपि जरसा ग्रस्तोऽपि लावण्यवान्
निष्प्राणोऽपि हरिर्विरूप तनुरप्यापुष्यते मन्मथः।
उद्योगोज्झितचेष्टितोऽपि नितरामालिङ्गयते च श्रिया
पुण्यादन्यदपि प्रशस्तमखिलं जायेत यद्दुर्घटम्॥

(अर्थः) पुण्य के उदय से अंधा भी सुलोचन कहलाता है तथा पुण्य के ही उदय से रोगी भी रूपवान कहलाता है और निर्बल भी पुण्य के उदय से सिंह के समान पराक्रमी कहा जाता है तथा पुण्य के ही उदय से बदसूरत भी कामदेव के समान सुन्दर कहा जाता है तथा पुण्य के ही उदय से

आलसी को भी लक्ष्मी अपनेआप आकर वर लेती है, विशेषा कहाँ तक कहा जाय ? जो उत्तम से उत्तम वस्तुएँ संसार में दुर्लभ कही जाती हैं, वे भी पुण्य के ही उदय से सब सुलभ हो जाती हैं अर्थात् वे बिना परिश्रम के ही प्राप्त हो जाती हैं ॥

❀ श्लोक १९१ में कहते हैं कि—

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे
धर्मो यस्य नभोऽपि तस्य सततं रत्नैः परैर्वर्षति॥

(अर्थः) जो मनुष्य धर्मात्मा हैं, उनके धर्म के प्रभाव से भयंकर सर्प भी मनोहर हार बन जाते हैं तथा पैनी तलवार भी उत्तम फूलों की माला बन जाती है, और धर्म के प्रभाव से ही प्राणघातक विष भी उत्तम रसायन बन जाता है, तथा धर्म के ही माहात्म्य से बैरी भी प्रीति करने लग जाता है और प्रसन्नचित्त होकर देव, धर्मात्मा पुरुष के आधीन हो जाते हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि विशेष कहाँ तक कहा जाय ? जिन मनुष्यों के हृदय में धर्म है अर्थात् जो मनुष्य धर्मात्मा हैं, उनके धर्म के प्रभाव से आकाश से भी उत्तम रत्नों की वर्षा होती है। इसलिये भव्य जीवों को धर्म से कदापि विमुख नहीं होना चाहिये।

❀ श्लोक १९४ में कहते हैं कि—

×××'लक्ष्मीस्तेषु प्रशस्ता विद्धति मनुजा ये सदा धर्ममेकम्'

अर्थात् जो मनुष्य सदा एक धर्म को ही धारण करते हैं, उन धर्मात्मा पुरुषों को उत्तम से उत्तम लक्ष्मी की ही प्राप्ति होती है।

❀ श्लोक १९५ में कहते हैं कि—

धर्मः श्रीवशमन्त्र एव परमो धर्मश्चकल्पद्रुमो
धर्मः कामगवीप्सितप्रदमणिधर्मः परं दैवतम्।
धर्मः सौख्यपरं परामृतनदीसम्भूतिसत्पर्वतो
धर्मो भ्रातरुपास्यतां किमपरैः क्षुद्रैरसत्कल्पनैः॥

(अर्थः) समस्त प्रकार की लक्ष्मी को देनेवाला होने के कारण यह धर्म लक्ष्मी के वश करने को मंत्र के समान है तथा यह धर्म वांछित चीज़ों को देनेवाला कल्पवृक्ष है और धर्म ही कामधेनु है

तथा धर्म ही समस्त चिन्ताओं को पूर्ण करनेवाला चिन्तामणि रत्न है और धर्म ही उत्कृष्ट देवता है, और धर्म ही उत्कृष्ट सुखों की राशिरूपी जो अमृतनदी उसके उत्पन्न कराने में पर्वत के समान है; इसलिये आचार्य उपदेश देते हैं कि अरे भाइयों! व्यर्थ नीच कल्पनाएँ करके क्या? केवल धर्म ही का सेवन करो, जिससे तुम्हारे सर्व कार्य सिद्ध हो जावें॥

❀ श्लोक १९६ में श्री पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं कि—

आस्तामस्यविधानतः पथिगतिर्धर्मस्य वार्तापि ये
श्रुत्वा चेतसि धार्यते त्रिभुवने तेषां न काः सम्पदः।
दूरे सज्जलपानमज्जनसुखं शीतैः सेरामारुतेः
प्राप्तं पद्मरजः सुगन्धिभिरपि श्रान्तं जनं मोदयेत्॥

(अर्थः) धर्म के मार्ग में विधिपूर्वक गमन करना तो दूर रहो किन्तु जो धर्म की बातों के प्रेमी मनुष्य केवल उसको सुनकर धारण कर लेते हैं, उनके भी तीनलोक में समस्त सम्पदाओं की प्राप्ति होती है;—जिसप्रकार शीतल जल के पीने का सुख तथा स्नान करने का सुख तो दूर ही रहो अर्थात् उससे तो शांति होती ही है, किन्तु जो तालाब की वायु कमलों की रजकर सुगन्धित हो रही है तथा शीतल है, उससे उत्पन्न हुआ जो सुख, वह भी थके हुवे मनुष्य को शान्त कर देता है।

❀ पद्मनन्दि पंचविंशतिका के दान अधिकार के २० वें श्लोक में कहते हैं कि—

सत्पात्रदानजनितोन्नतपुण्यराशि-
रेकत्र वा परजने नरनाथलक्ष्मीः।
आद्यात्परस्तदपि दुर्गत एव यस्मात्-
आगामिकालफलदायि न तस्य किंचित्॥

(अर्थ :) एक मनुष्य तो उत्तम पात्रदान से पैदा हुए श्रेष्ठ पुण्य का संचय करता है और दूसरा राजलक्ष्मी का अच्छी तरह भोग करता है परन्तु उन दोनों में दूसरा राजलक्ष्मी का भोग करनेवाला ही पुरुष दरिद्री है क्योंकि आगामी काल में उसको किसी प्रकार की संपत्ति आदि का फल नहीं मिल सकता, किन्तु पात्रदान करनेवाले को तो आगामी काल में उत्तम संपदारूपी फलों की प्राप्ति होती है।

❀ दान अधिकार के ३८ वें श्लोक में कहते हैं कि—

पुण्यक्षयात्क्षयमुपैति न दीयमाना
लक्ष्मीरतः कुरुत संततपात्रदानम्।
कूपेन पश्यत जलं गृहिणः समन्तात्-
आकृष्यमाणमपि वर्धते एव नित्यम्॥

(अर्थः) हे गृहस्थो! कुवा से सदा चारों तरफ से निकला हुआ भी जल जिसप्रकार निरन्तर बढ़ता ही रहता है—घटता नहीं है, उसीप्रकार संयमी पात्रों के दान में व्यय की हुई लक्ष्मी सदा बढ़ती ही जाती है—घटती नहीं, किन्तु क्षय होने पर ही वह घटती है। इसलिये मनुष्य को सदा संयमी मात्रा में दान देना चाहिए।

❀ श्लोक ४४ में कहते हैं कि—

सौभाग्यवशौर्यसुखरूप-विवेकिताद्या
विद्यावपुर्धनगृहाणि कुले च जन्म।
सम्पद्यतेऽखिलमिदं किल पात्रदानात्-
तस्मात्किमत्र सततं क्रियते न यत्नः॥

(अर्थः) सौभाग्य शूरता सुख विवेक आदि तथा विद्या शरीर धन घर और उत्तम कुल में जन्म ये सब बातें उत्तमादि पात्रदान से ही होती हैं, इसलिये भव्यजीवों को सदा पात्रदान में ही प्रयत्न करना चाहिये।

❀ अनित्य अधिकार में पद्मनन्दि आचार्यदेव कहते हैं कि—

दुर्वारार्जितकर्मकारणवशादिष्टे प्रनष्टे नरे
यः शोकं कुरुते यदत्र नितरामुन्मत्तलीलायितम्।
यस्मात्तत्र कृते न सिध्यति किमप्येतत्परं जायते
नश्यन्त्येव नरस्य मूढमनसो धर्मार्थकामादयः॥६॥

(अर्थः) जिसका निवारण नहीं हो सकता ऐसा, पूर्वभव में संचित कर्मरूपी कारण के वश से अपने प्रिय स्त्री, पुत्र, मित्र आदि के नष्ट होने पर जो मनुष्य उन्मादी मनुष्य की लीला के समान इस संसार में बिना प्रयोजन का अत्यन्त शोक करता है, उस मूर्ख मनुष्य को उस प्रकार के व्यर्थ शोक करने से कुछ भी नहीं मिलता, तथा उस मूढ़ मनुष्य के धर्म, अर्थ, काम आदि का भी नाश हो जाता है। इसलिये विद्वानों को इस प्रकार का शोक कदापि नहीं करना चाहिये।

❀ दुर्लंघ्याद्भवितव्यताव्यतिकरान्नष्टे प्रिये मानुषे
यच्छोकः क्रियते तदत्र तमसि प्रारभ्यते नर्तनम्।
सर्वं नश्वरमेव वस्तु भुवने मत्त्वा महत्या धिया
निर्धूताखिलदुःखसंततिरहो धर्मः सदा सेव्यताम् ॥९॥

(अर्थः) जिसका दुःख से भी उल्लंघन नहीं हो सकता, ऐसी जो भवितव्यता (दैव) उसके व्यापार से अपने प्रिय स्त्री, पुत्र आदि के नष्ट होने पर जो मनुष्य शोक करता है, वह अंधकार में नृत्य को आरंभ करता है–ऐसा जान पड़ता है। अतः आचार्य उपदेश देते हैं कि हे भव्य जीवो! अपने ज्ञान से संसार में सब चीज़ों को विनाशीक समझकर समस्त दुःखों की संतान को जड़ से उड़ानेवाले धर्म का ही तुम सदा सेवन करो।

❀ पूर्वोपार्जितकर्मणा विलिखितं यस्यावसानं यदा
तज्जायेत तदैव तस्य भविनो ज्ञात्वा तदेतद्ध्रुवम्।
शोकं मुञ्च मृते प्रियेऽपि सुखदं धर्मं कुरुष्वादरात्
सर्पे दुरमुपागते किमिति भोस्तद्घृष्टिराहन्यते ॥१०॥

(अर्थः) पूर्वभव में संचित धर्म के द्वारा जिस प्राणी का अन्त जिस काल में लिखा गया है, उस प्राणी का अंत उसी काल में होता है—ऐसा भलीभाँति निश्चय करके, हे भव्य जीवो! तुम अपने प्रिय भी स्त्री-पुत्र आदि के मरने पर शोक छोड़ दो तथा बड़े आदर से धर्म का आराधन करो, क्योंकि सर्प के दूर चले जाने पर उसकी रेखा का पीटना व्यर्थ है।

❀ 'वांछत्येव सुखं तदत्र विधिना दत्तं परं प्राप्यते'××× (श्लोक ३६)

अर्थः—संसार में समस्त प्राणी इन्द्रियों से पैदा हुवे सुख की अभिलाषा सदा करते रहते हैं किन्तु वह सुख कर्मानुसार ही मिलता है, इच्छानुसार नहीं मिलता।

❀ राजापि क्षणमात्र तो विधिवशाद्रङ्कायते निश्चितं
सर्वव्याधिविवर्जितोऽपि तरुणोऽप्याशु क्षयं गच्छति।
अन्यैं किं किल सारतामुपगते श्रीजीविते द्वे तयोः
संसारे स्थितिरीदृशीति विदुषा क्वान्यत्र कार्यो मदः ॥४२॥

(अर्थः) अपने पूर्वापार्जित कर्म के वश से राजा भी क्षण भर में निश्चय से निर्धन हो जाता है तथा समस्त रोगों से रहित भी जवान मनुष्य देखते-देखते नष्ट हो जाता है, इसलिये समस्त पदार्थों

में सारभूत जीवन तथा धन की जब संसार में ऐसी स्थिति है, तब और पदार्थों की क्या बात है ? अर्थात् वे तो अवश्य ही विनाशीक हैं, अत: विद्वानों को किसी पदार्थ में अहंकार नहीं करना चाहिये।

❀ श्री आत्मानुशासन में कहते हैं कि—

(गाथा २१) ''धर्मादवाप्त विभवो××'

(अर्थ:) ''जो पुरुष धर्म के प्रसाद से सुखसम्पदारूप वैभव को प्राप्त हुआ है उसे तो×××''

''धर्मरूपी बीज के बिना हजारों प्रकार से खेदखिन्न होने पर भी सुख प्राप्ति नहीं होती। आचार्य भगवान कहते हैं कि हे भाई! यदि तू विचक्षण हो तो ऐसा निश्चय कर कि मुझे तो वर्तमान सुखसामग्री प्राप्त हुई है, वह मात्र एक पूर्व धर्म के सेवन का ही फल है।'' (पृष्ठ १४-१५)

❀ (गाथा-३१)

''पुण्यं कुरुष्य कृत पुण्यमनीदशोपि
नोपद्रवोमि भवति प्रभवेच्च मूर्त्त्वै
संतापयन् जगदशेषमशीत रश्मि:
पद्मेषु पश्य विदधाति विकाश लक्ष्मिम्॥

हे भव्यात्मा! यदि तू सुख का अभिलाषी हो तो पुण्य कर। पुण्यवान जीव को प्रबल उपसर्ग भी पीड़ा नहीं दे सकता। परन्तु वही उपसर्ग किसी समय उसे महान विभूति प्राप्त होने का निमित्त हो जाता है×××

जिनके पाप का उदय वर्त रहा है, उन्हीं को उपद्रव दु:खदाता होता है; परन्तु पुण्योदय-प्राप्त जीव को तो उल्टा निभूति प्रदान करनेवाला हो जाता है। जगत में अनेक स्थानों पर प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जिस उपद्रव से सब को महान दु:ख होता है, उसी उपद्रव से, जिसके पुण्योदय वर्त रहा है उसे, विपुल धनादिक की प्राप्ति होती है।''××× (पृष्ठ २३)

❀ (गाथा : ३७)

''आयु:श्रीर्वपुरादिकं यदि भवेत् पुण्यं पुरोवार्जितं
स्यात् सर्वं नभवेन्नतच्चनितरा मायासितेऽप्यात्मनि।

❀ ❀ ❀

जीव को दीर्घायु, लक्ष्मी, निरोग और सुन्दर शरीरादि मात्र एक पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से

ही प्राप्त होते हैं, अर्थात् जिसने पूर्वकाल में पुण्योपार्जन किया हो, उसी को यह सर्व विभूतियाँ प्राप्त होती हैं, अन्यथा (पुण्य के बिना) अनेक प्रकार से उद्यम करने पर भी और खेदखिन्न होने पर भी कोई प्राप्ति नहीं होती।'' (पृष्ठ २८)

❀ गाथा ५६ के अर्थ में कहते हैं कि—''असाता के उदय से जब जीव को इच्छित परिग्रह न मिले, तब वह महान दु:खी होता है, और साता के उदय से पुण्यानुसार जो कुछ मिलता है, वह कम पड़ता है—इस दाह से भी वह महा दु:खी होता है।'' (पृष्ठ ४३)

❀ गाथा ६१ के अर्थ में कहते हैं कि—''लाभ-अलाभ, जीवन-मरण, बैरी-बंधु, राजा-रंक, संपदा-आपदा इन सर्व द्वंद्व अवस्थाओं को कर्मजनित और विनाशीक समझ।'' (पृष्ठ ४८)

❀ (गाथा १४८)

''साधारणो सकल जंतुषु वृद्धिनाशो जन्मान्तरार्जित शुभाशुभ कर्मयोगात्।

पूर्वोपाजित शुभाशुभ कर्म संयोग से शरीरादि परपदार्थों की हानि-वृद्धि तो सर्व संसारी जीवों को होती है; इसमें वास्तव में किंचित् भी जीव का छोटा-बड़ापन नहीं है।

❀ धनादि की वृद्धि और निर्धनावस्था का नाश करनेवाले जीव को लोग चतुर (बुद्धिमान) कहते हैं, तथा निर्धनावस्था की वृद्धि और धनादि का नाश होने से उसे मूर्ख माना जाता है।—लोगों की उपरोक्त मान्यता नितान्त भूल है, क्योंकि वह तो पूर्वोपार्जित शुभाशुभ प्रारब्धोदय से होता है; सर्व जीवों को ऐसी हानि वृद्धि तथारूप प्रारब्धोदक द्वारा स्वयमेव हो रही है।××× जगत में प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि कोई कोई बुद्धिमान पुरुष अच्छी तरह पूर्ण प्रयत्न करने पर भी निर्धन रहते हैं; जबकि कोई-कोई मूर्ख जीव बिना किसी प्रयत्न के, थोड़े प्रयत्न से, या विपरीत प्रयत्न से भी धनवान होते दिखाई देते हैं।×××इसमें जीव का पुरुषार्थ मानना, वह निरर्थक जैसा है।''

(पृष्ठ १४८)

❀ गाथा १६१ में कहते हैं कि 'हे भिक्षु! यदि तेरी वांछा विषयभोग सामग्री की ही हो, तो भी कुछ सहनशील बनकर धैर्य रख! तू जिन भोगादिक की इच्छा रखता है, उनसे विपुल और उत्तम देवलोक में हैं।×××जिस धर्मकृति का फल स्वर्गादि अनुपम अभ्युदय हैं उसे, कुछ काल तक धैर्य रखकर वृत्ति को रोककर आचरण में ला, जिससे कुछ ही समय में तेरी इच्छित भोगसामग्री तुझे स्वयं प्राप्त होगी।''

''[मुनिपदधारी विषयाभिलाषी होना यद्यपि किंचित् भी योग्य नहीं है, तथापि भ्रष्ट होते

हुए जीव को लोभ दिखाकर सद्धर्म में स्थिर करना योग्य है—ऐसा समझकर यह उपदेश दिया है।]'' (पृष्ठ १३६)

❀ ''सुभाषित रत्नसंदोह'' में कहते हैं कि—

(श्लोक ३५६) दैव बड़ा ही स्वेच्छाचारी है। देखो! न्यायसिद्ध जो यह बात है कि जो लोग नीति पर चलनेवाले हैं—योग्य कार्य करते हैं, उन्हें ही लक्ष्मीवाला-धनवान करे और जो पथ्य से रहते हैं—नियमानुसार आहार-विहार करनेवाले हैं, उन्हें ही निरोग बनावे। परंतु इसकी छटा विचित्र ही है जो अनीतिसेवियों को-अन्याय-मार्ग से प्रवर्तनेवालों को तो धनवाला बनाता है और अपथ्यसेवियों विरुद्ध आहार-विहार करनेवालों को निरोग बनाता है। जिससे स्पष्ट इस (दैव अर्थात् कर्म) का स्वेच्छाचारीपना मालूम पड़ता है॥

[—यहाँ ऐसा कहा है कि वर्तमान में अन्यायी हो ऐसे जीव को भी पूर्वपुण्य के कारण धन की प्राप्ति होती है, और अपथ्य आहार का सेवन करने पर भी पूर्व पुण्य के कारण शरीर निरोगी रहता है।]

❀ (गाथा ३५७)

जलधिगतोपि न कश्चित् कश्चित्तटगोपि रत्नमुपयाति।
पुण्यविपाकान्मर्त्यो मत्वेति विमुच्यतां खेदः॥

(अर्थः) कोई मनुष्य तो समुद्र के अंदर जाकर भी रत्न नहीं पाता और कोई उसमें बिना जाये तट पर बैठा बैठा ही रत्न पा लेता है, इसलिये यह सब महिमा पाप और पुण्य की जानकर मनुष्यों को खेद छोड़ देना चाहिये।

❀ (गाथा ३५९)

जिनका भाग्य सीधा है, उनका द्वीप, समुद्र, पर्वतों के शिखर, दिशाओं के अंत और कुए के तल में गिरा हुआ भी रत्न मिल जाता है और जिनका वह भाग्य टेढ़ा है, उनका हाथ पर रखा हुआ भी नष्ट हो जाता है॥

❀ (गाथा ३६०)

विपदोपि पुण्यभाजां जायंते संपदोत्र जन्मवतां।
पापविपाकद्विपदो जायंते संपदोऽपि सदा॥

(अर्थः) पुण्य के विपाक से इस संसार में जीवों पर आई हुई विपत्तियां भी संपत्तियां हो

जाती हैं और पाप के प्रभाव से संपत्तियां भी विपत्तियां बन जाती हैं ॥

❀ (गाथा ३६६)

धनधान्यकोशनिचयाः सर्वे जीवस्य सुखकृतः संति
भाग्येनेति विदित्वा विदुषा न विधीयते खेदः ॥

(अर्थः) जीव को संसार में जितने भी धन, धान्य खजाने आदि सुखदायक पदार्थ हैं, वे सब भाग्य के अनुकूल रहने पर ही होते हैं—ऐसा जानकर विद्वान लोग उसमें खेद नहीं करते ॥

❀ (गाथा ३७०)

दयित जनेन वियोगं संयोगं खल जनेन जीवानां।
सुख-दुःखं च समस्तं विधिरेव निरंकुशः कुरुते ॥

(अर्थः) संसार में जीवों का इष्ट के साथ वियोग, अनिष्ट के साथ संयोग और सुख-दुःख की प्राप्ति कराना आदि सब निर्भय रीति से प्रवर्तनेवाले दैव के हाथ में है। दैव ही बिना किसी भाग्य के इन सब बातों को करता है। [दैव=पूर्वकर्म]

❀ (गाथा ३७२)

नश्यति हस्तादर्थः पुण्यविहीनस्य देहिनो लोके।
दूरादेत्य करस्थं भाग्ययुनो जायते रत्नं ॥

(अर्थः) जो पुरुष भाग्यहीन है—जिसको पूर्वोपार्जित पापकर्म उदय में आ फल दे रहा है, उसके हाथ में आया हुआ भी धन नष्ट हो जाता है और जो पुण्यसहित है-सौभाग्यवाला है, उसके दुष्प्राप्य और दूरवर्ती भी धन हाथ में आ जाता है।

[—इसप्रकार ''सुभाषित रत्नसंदोह'' में दैव अधिकार में स्पष्ट रूप से विस्तारपूर्वक वर्णन किया है कि जीवों को लक्ष्मी आदि का संयोग-वियोग होना, वह दैव का अर्थात् पूर्वकृत पुण्य-पाप का ही फल है।]

❀ श्री महापुराण (-आदिपुराण) के पाँचवें सर्ग में भगवत् जिनसेनाचार्य कहते हैं कि—

(श्लोकः १४) **इतः शृणु खगाधीश वक्ष्ये श्रेयोऽनुबन्धि ते।**
वैद्याधरीमिमां लक्ष्मीं विद्धि पुण्यफलं विभो ॥

(१५) **धर्मादिष्टार्थसम्पत्ति-स्ततः कामसुखोदयः।**
स च संप्रीतये पुंसां धर्मात्सैषा परम्परा ॥

(१६) **राज्यञ्च सम्पदो भोगाः कुले जन्म सरूपता।**
पाण्डित्यमायुरारोग्यं धर्मस्यैतत्फलं विदुः॥

(१७) **न कारणाद्विना कार्यं निष्पत्तिरिह जातुचित्।**
प्रदीपेन विना दीप्ति दृष्टपूर्वा किमु क्वचित्॥

(१८) **नांकुरः स्याद्विना बीजाद्विना वृष्टिर्न वारिदात्।**
छत्राद्विनापि नच्छाया विना धर्मान्न सम्पदः॥

(अर्थ)

(१४) हे विद्याधरों के स्वामी! जरा इधर सुनिये, मैं आपके कल्याण करनेवाले कुछ वचन कहूंगा। हे प्रभो! आपको जो यह विद्याधरों की लक्ष्मी प्राप्त हुई है, उसे आप केवल पुण्य का ही फल समझिये।'

(१५) हे राजन्! धर्म से इच्छानुसार सम्पत्ति मिलती है।×××

(१६) राज्य, सम्पदाएँ, भोग, योग्य कुल में जन्म, सुन्दरता, पाण्डित्य, दीर्घायु और आरोग्य—यह सब पुण्य का ही फल समझिये॥

(१७-१८) जिसप्रकार कारण के बिना कभी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती××× उसीप्रकार धर्म (पुण्य) के बिना सम्पदाएँ प्राप्त नहीं होती॥

❀ महापुराण के छट्ठे पर्व में आचार्यदेव कहते हैं कि— (श्लोक १९५)

ततोऽभिषेकं द्वात्रिंशत्-सहस्रधरणीश्वरैः।
चक्रवर्ती परं प्रापत् पुण्यैः किं नु न लभ्यते॥

(अर्थः) उस समय चक्रवर्ती ने बत्तीस हजार राजाओं द्वारा किये हुए राज्याभिषेक महोत्सव को प्राप्त किया था, सो ठीक ही है, पुण्य से क्या-क्या नहीं प्राप्त होता?

(श्लोक २०२) **पुण्यकल्पतरोरुच्चैः फलानीव महान्त्यलम्।**
बभुवुस्तस्य रत्नानि चतुर्दश विशां विभोः॥

(२०३) **निधयो नव तस्यासन् पुण्यानामिव राशयः।**
यैरक्षयैरमुष्यासीद् गृहवार्ता महोदया॥

अर्थ : (२०२) पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के बड़े से बड़े फल इतने ही होते हैं, यह बात सूचित करने के लिये ही मानो उस चक्रवर्ती के चौदह महारत्न प्रकट हुए थे।

(२०३) उसके यहाँ पुण्य की राशि के समान नौ अक्षय निधियां प्रकट हुई थीं, उन निधियों से उसका भण्डार हमेशा भरा रहता था।

❀ भगवत् जिनसेनाचार्य महापुराण (आदिपुराण) के २८ वें पर्व में कहते हैं कि—

(श्लोक २१३) देवोयमम्बुधिमगाधमलङ्घ्यपारम्
उल्लंघ्य लब्धविजय. पुनरप्युपायात्।
पुण्यैकसारथिरिहेति विनान्तरायैः
पुण्ये प्रसेदुषि नृणां किमिवास्त्यलङ्घ्यम्॥

(२१४) पुण्यादयं भरतचक्रधरो जिगीपुः
उद्भिन्नवेलमनिलाहतवीचिमालम्।
प्रोल्लङ्घ्य वार्धिममरं सहसा विजिग्ये
पुण्ये बलीयसि किमस्ति जगत्यजय्यम्॥

(२१५) पुण्योदयेन मकराकरवारिसीम
पृथ्वीं स्वसादकृत चक्रधरः पृथुश्रीः।
दुर्लङ्घ्यमब्धिमवगाह्य विनोपसर्गे
पुण्यात्परं न खलु साधनमिष्टसिद्धैयै॥

(२१६) चक्रायुधोऽयमरिचक्रभयंकरश्रीः
आक्रम्य सिन्धुमतिभीषणनक्रचक्रम्।
चक्रे वशे सुरमवश्यमनन्य यश्यं
पुण्यात्परं न हि वशीकरणं जगत्याम्॥

(२१७) पुण्यं जले स्थलमिवाभ्यवपद्यते नृन्
पुण्यं स्थले जलमिवाशु नियन्ति तापम्।
पुण्यं जलस्थल भये शरणं तृतीयं
पुण्यं कुरुध्वमत एव जना जिनोक्तम्॥

(२१८) पुण्यं परं शरणमापदि दुर्विलंघ्यं
पुण्यं दरिद्रति जने धनदायि पुण्यम्।

पुण्यं सुखार्थिनि जने सुखदायरित्नं
पुण्यं जिनोदितमतः सुजनाश्चिनुध्वम्॥
(२२०) इत्थं स्वपुण्यपरिपाकजमिष्टलाभं
संश्लाघयन् जनतया श्रुतपुण्यघोषः।
चक्री सभागृहगतो नृपचक्रमध्ये
शक्रोपमः पृथुनृपासनमध्यवात्सीत्॥

—अर्थ—

(२१३) एक पुण्य ही जिनका सहायक है, ऐसे महाराज भरत अगाध और पाररहित समुद्र को उल्लंघन कर तथा योग्य उपाय से विजय प्राप्त कर बिना किसी विघ्न-बाधा के यहाँ वापिस आ गये हैं, सो ठीक ही है क्योंकि निर्मल पुण्य के रहते हुए मनुष्यों को क्या अलंघनीय (प्राप्त न होने योग्य) रह जाता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं।

(२१४) सबको जीतने की इच्छा करनेवाले भरत चक्रवर्ती ने पुण्य के प्रभाव से, जिसमें ज्वार-भाटा उठ रहे हैं और जिसमें लहरों के समूह वायु से ताडित हो रहे हैं ऐसे समुद्र को उल्लंघन कर शीघ्र ही मागध देव को जीत लिया, सो ठीक ही है क्योंकि अतिशय बलवान् पुण्य के रहते हुए संसार में अजय्य अर्थात् जीतने के अयोग्य क्या रह जाता है ?—कुछ भी नहीं।

(२१५) बहुत भारी लक्ष्मी धारण करनेवाले चक्रवती भरत ने पुण्यकर्म के उदय से ही बिना किसी उपद्रव के, उल्लंघन कर समुद्र का जल ही जिसकी सीमा है, ऐसी पृथिवी को अपने आधीन कर लिया, सो ठीक ही है क्योंकि इष्ट पदार्थों की सिद्धि के लिये पुण्य से बढ़कर और कोई साधन नहीं है।

(२१६) शत्रुओं के समूह के लिये जिन की सम्पत्ति बहुत ही भयंकर है, ऐसे चक्रवर्ती भरत ने अत्यंत भयंकर मगर-मच्छों के समूह से भरे हुए समुद्र को उल्लंघन कर अन्य किसी के वश न होने योग्य मागध देव को निश्चितरूप से वश कर लिया, सो ठीक ही है क्योंकि लोक में पुण्य से बढ़कर और कोई वशीकरण (वश करनेवाला) नहीं है॥

(२१७) पुण्य ही मनुष्यों को जल में स्थल के समान हो जाता है, पुण्य ही स्थल में जल के समान होकर शीघ्र ही समस्त संताप को नष्ट कर देता है, और पुण्य की जल तथा स्थल दोनों जगह के भय में एक तीसरा पदार्थ होकर शरण होता है, इसलिये हे भव्य जनों! तुम लोग जिनेन्द्रभगवान

के द्वारा कहे हुए पुण्यकर्म करो।

(२१८) पुण्य ही आपत्ति के समय किसी के द्वारा उल्लंघन न करने योग्य उत्कृष्ट शरण है, पुण्य ही दरिद्र मनुष्यों के लिये धन देनेवाला है, और पुण्य ही सुख की इच्छा करनेवाले लोगों के लिये सुख देनेवाला है, इसलिये हे सज्जन पुरुषों! तुम लोग जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए इस पुण्यरूपी रत्न का संचय करो॥

(२२०) इसप्रकार जिसने लोगों के समूह से पुण्य की घोषणा सुनी है, ऐसे चक्रवर्ती भरत, अपने पुण्यकर्म के उदय से प्राप्त हुए इष्ट वस्तुओं के लाभ की प्रशंसा करते हुए सभा-भवन में पहुँचे××× ॥

❀ ❀ ❀

❀ महापुराण के ३७ वें पर्व में भगवत् जिनसेनाचार्य भरत चक्रवर्ती के अनेकविध वैभव का वर्णन करने के पश्चात् कहते हैं कि—

(श्लोक १९०) **पुण्यकल्पतरोरासन् फलायेन्तानि चक्रिणः।**
यान्यनन्योपभोग्यानि भोगाङ्गान्यतुलानि वै॥

(१९१) **पुण्याद्विना कुतस्तादृग् रूपसंपदनीदृशी।**
पुण्याद्विना कुतस्तादृग् अभेद्यं गात्रबन्धनम्॥

(१९२) **पुण्याद्विना कुतस्तादृङ् निधिरत्नर्द्धिरुर्जिता।**
पुण्याद्विना कुतस्तादृग् इमाश्वादिपरिच्छदः॥

(१९३) **पुण्याद्विना कुतस्तादृग् अन्तःपुरमहोदयः।**
पुण्याद्विना कुतस्तादृग् दशांगो भोगसम्भवः॥

(१९४) **पुण्याद्विना कुतस्तादृग् आज्ञाद्वीपाब्धिलङ्घिनी।**
पुण्याद्विना कुतस्तादृग् जयश्रीर्जित्वरी दिशाम्॥

(१९५) **पुण्यादविना कुतस्तादृक्प्रतापः प्रणतामरः।**
पुण्याद्विना कुतस्तादृग् उद्योगो लङ्घितार्णव॥

(१९६) **पुण्याद्विना कुतस्तादृग् प्राभवं त्रिजगज्जयि।**
पुण्याद्विना कुतस्तादृक् नगराजजयोत्सवः॥

(१९७) पुण्याद्विना कुतस्तादृक् सत्कारस्तत्कृतोऽधिकः।
पुण्याद्विना कुतस्तादृक् सरिहेव्यभिषेचनम्॥

(१९८) पुण्याद्विना कुतस्तादृक् खचरालयनिर्जयः।
पुण्याद्विना कुतस्तादृग्रत्नलाभोऽन्यदुर्लभः॥

(१९९) पुण्याद्विना कुतस्तादृग् आयतिर्भरतेऽखिले।
—धनागमः प्रभावो वा।
पुण्याद्विना कुतस्तादृक् कीर्तिर्दिक्तट लङ्घिनी॥

(२००) ततः पुण्योदयोद्भूतां मत्वा चक्रभृतः श्रियम्।
चिनुध्वं भो बुधाः पुण्यं यत्पुण्यं सुखसम्पदाम्॥

—अर्थ—

(१९०) चक्रवर्ती के ये सब भोगोपभोग के साधन उसके पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के फल थे, उन्हें अन्य कोई नहीं भोग सकता था और वे संसार में अपनी बराबरी नहीं रखते थे।

(१९१) पुण्य के बिना चक्रवर्ती के समान अनुपम रूप-सम्पदा कैसे मिल सकती है? पुण्य के बिना वैसा अभेद्य शरीर का बंधन कैसे मिल सकता है?

(१९२) पुण्य के बिना अतिशय उत्कृष्ट निधि और रत्नों की ऋद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है? पुण्य के बिना कैसे हाथी घोड़ा आदि का परिवार कैसे मिल सकता है?

(१९३) पुण्य के बिना वैसे अन्तःपुर का वैभव कैसे मिल सकता है? पुण्य के बिना दस प्रकार के भोगोपभोग कहाँ मिल सकते हैं?

(१९४) पुण्य के बिना द्वीप और समुद्रों को उल्लंघन करनेवाली वैसी आज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है? पुण्य के बिना दिशाओं को जीतनेवाली वैसी विजयलक्ष्मी कहाँ मिल सकती है?

(१९५) पुण्य के बिना देवताओं को भी नम्र करनेवाला वैसा प्रताप कहाँ प्राप्त हो सकता है? पुण्य के बिना समुद्र को उल्लंघन करनेवाला वैसा उद्योग कैसे मिल सकता है?

(१९६) पुण्य के बिना तीनों लोकों को जीतनेवाला वैसा प्रभाव कहाँ हो सकता है? पुण्य के बिना वैसा हिमवान् पर्वत को विजय करने का उत्सव कैसे मिल सकता है?

(१९७) पुण्य के बिना हिमवान् देव के द्वारा किया हुआ वैसा अधिक सत्कार कहाँ मिल

सकता है ? पुण्य के बिना नदियों की अधिष्ठात्री देवियों के द्वारा किया हुआ वैसा अभिषेक कहाँ हो सकता है ?

(१९८) पुण्य के बिना विजयार्द्ध पर्वत को जीतना कैसे हो सकता है ? पुण्य के बिना अन्य मनुष्यों को दुर्लभ वैसे रत्नों का लाभ कहाँ हो सकता है ?

(१९९) पुण्य के बिना समस्त भरतक्षेत्र में वैसा सुन्दर विस्तार कैसे हो सकता है ?—अथवा पुण्य के बिना कहाँ ऐसा धन का आगमन जातैं सकल भरतक्षेत्र हासिल आवे ? और पुण्य के बिना दिशाओं के किनारे को उल्लंघन करनेवाली वैसी कीर्ति कैसे हो सकती है ?

(२००) इसलिये हे पंडितजन! चक्रवर्ती की विभूति को पुण्य के उदय से उत्पन्न हुई मानकर उस पुण्य का संचय करो जो कि समस्त सुख और सम्पदाओं की दुकान के समान है ॥

[—इसप्रकार धन-राज्यादि बाह्य वैभवरूप सामग्री की प्राप्ति वह पुण्य का फल है—यह बात पुराणों में जगह-जगह स्पष्टरूप से कही गई है।]

❀ ❀ ❀

❀ पंचाध्यायी में कहते हैं कि—

'सद्वेद्योदयभावान् गृहधनधान्यं कलत्रपुत्राश्च×××××

अर्थात्—सातावेदनीयकर्म के निमित्त से जिनका सद्भाव है ऐसे घर, धन, धान्य, स्त्री, पुत्रादि×××' (अध्याय १, गाथा ५८१)

❀ **'एको दरिद्र एको हि श्रीमानिति च कर्मणः ॥**

कोई दरिद्री और कोई धनवान होता है, इसलिये ऐसी दशा की विचित्रता से कर्मों का अस्तित्व सिद्ध होता है।' (अध्याय २, गाथा ५०)

❀ **'यशः श्रीसुतमित्रादि सर्वं कामयते जगत्।**
नास्य लाभोऽभिलाषेपि बिना पुण्योदयात्सतः ॥४४०॥

(अर्थः) सर्व जगतवासी अज्ञानी जीव यश, सम्पत्ति, पुत्र और मित्रादि की इच्छा करते हैं, परन्तु पुण्य के सद्भाव बिना उन जीवों को उनकी अभिलाषा होने पर भी इष्ट की सिद्धि नहीं होती।' (अध्याय २, गाथा ४४०)

❀ **'जरा मृत्युदरिद्रादि न हि (नापि) कामयते जगत्**
तत्संयोगो बलादस्ति सतस्तत्राऽश्शुभोदयात् ॥४४१॥

(अर्थः) जगत वृद्धावस्था, मृत्यु और दारिद्रादिकता की इच्छा नहीं करता; परन्तु संसार में जीवों को अशुभोदय के सद्भाव से, अभिलाषा न होने पर भी उन वृद्धावस्थादि का संयोग होता है।' (अध्याय २, गाथा ४४१)

❀ सत्तास्वरूप में कहते हैं कि—

''जीवन-मरण, सुख-दुःख, आपत्ति-संपत्ति, रोग-निरोगता, लाभ-अलाभ इत्यादि तो जैनी वा अन्यमती सबके अपने-अपने पूर्वोपार्जित कर्मोदय के आश्रित सामान्य-विशेषरूप से होय हैं। (पृष्ठ १७)

❀ ❀ ❀

❀ मोक्षमार्ग-प्रकाशक में कहते हैं कि—

''पुण्य का उदय होने पर इन्द्रिय सुख के कारणभूत सामग्री स्वयं प्राप्त होती है, तथा पाप का उदय दूर होने पर दुःख के कारणभूत सामग्री स्वयं दूर होती है।'' (पृष्ठ-८)

❀ ''चार अघातिकर्मों के निमित्त से आत्मा को बाह्य सामग्री का संबंध होता है। वहाँ वेदनीय द्वारा तो शरीर में और शरीर से बाह्य नाना प्रकार के सुख-दुःख के कारणभूत परद्रव्यों का संयोग होता है।×××इसप्रकार अघातिकर्मों द्वारा बाह्य सामग्री एकत्रित होती है।'' (पृष्ठ २८)

❀ ''अघातिकर्म के उदय से बाह्य सामग्री प्राप्त हो जाती है; उसमें शरीरादिक तो जीव के प्रदेशों से एकक्षेत्रावगाही होकर एक बंधानरूप ही होते हैं, तथा धन-कुटुम्बादिक जो आत्मा से भिन्नरूप हैं, वे सब कहीं बंध के कारण नहीं हैं...'' (पृष्ठ ३०)

❀ ''अघातिकर्मों में वेदनीयकर्म के उदय से शरीर में बाह्य अनेक सुख-दुःख के कारण उत्पन्न होते हैं। शरीर में निरोगता, सरोगता, दुर्बलता इत्यादि तथा क्षुधा, तृषा, रोग, खेद, पीड़ा इत्यादि सुख-दुःख के कारण मिल जाते हैं। शरीर से बाहर भी रुचिकर ऋतु-पवनादिक और इष्ट स्त्री-पुत्र-मित्र-धनादि, तथा अरुचिकर ऋतु-पवनादिक और अनिष्ट स्त्री-पुत्र-शत्रु-दारिद्रय-बध-बंधनादिक सुख-दुःख के कारण मिल जाते हैं। ×××—इसप्रकार कारणों का मिलना वेदनीयकर्म के उदय से होता है। वहाँ सातावेदनीय के उदय से सुख के कारण मिल जाते हैं और असातावेदनीय के उदय से दुःख के कारण मिल जाते हैं।'' (पृष्ठ ४५-४६)

❀ ''वेदनीयकर्म के उदय से दुःख-सुख के कारणों का संयोग होता है। उनमें कोई तो शरीर में ही ऐसी अवस्था होती है और कोई शरीर की अवस्था को निमित्तभूत बाह्य संयोग होते हैं

तथा कोई बाह्य वस्तुओं का ही संयोग होता है। असाता वेदनीयकर्म के उदय से शरीर में भूख, प्यास, उच्छ्वास, पीड़ा और रोगादिक होते हैं; शरीर की अनष्टि अवस्था को निमित्तभूत बाह्य से अति शीत, ताप, वायु और बंधनादिक का संयोग होता है तथा बाह्य शत्रु-कुपुत्रादिक और कुवर्णादि सहित पुद्गल स्कंधों का संयोग होता है। ×××और सातावेदनीय कर्म के उदय से शरीर में निरोगता, बलवानता इत्यादिक होते हैं; शरीर की इष्ट अवस्था को निमित्तभूत बाह्य खान-पानादिक और रुचिकर पवनादिक का संयोग होता है, तथा बाह्य मित्र, सुपुत्र, स्त्री, नौकर-चाकर, हाथी, घोड़ा, धन, धान्य, मन्दिर और वस्त्रादिक का संयोग होता है।'' (पृष्ठ ६१-६२)

❀ और मुख्यतः कुछ सामग्री साता के उदय से प्राप्त होती है तथा कुछ असाता के उदय से प्राप्त होती है, इसलिये उन सामग्रियों के द्वारा सुख-दुःख का भास होता है; किन्तु निर्णय करने पर मोह से ही सुख-दुःख का मानना होता है; परन्तु अन्य द्वारा सुख-दुःख होने का नियम नहीं है। केवली भगवान को साता-असाता का उदय तथा सुख-दुःख के कारणरूप सामग्री का भी संयोग है, परन्तु मोह के अभाव से उन्हें किंचित् मात्र भी सुख-दुःख नहीं होता।'' (पृष्ठ ६४)

❀ ''अघातिकर्मों में मुख्यरूप से उन्हें (एकेन्द्रिय जीवों को) एक प्रकृतियों का ही उदय होता है। असाता वेदनीय का उदय होने पर उसके निमित्त से वे महा दुःखी होते हैं; पवन से टूट जाते हैं, शीत-उष्णता से और जल न मिलने से वनस्पति सूख जाती है, अग्नि से जल जाती है, कोई छेदता है, भेदता है, मसलता है, खाता है, तोड़ता है—इत्यादि अवस्था होती है।'' (पृष्ठ ६८)

❀ ''वेदनीय में मुख्यरूप से एक असाता का ही उनको (नारकियों को) उदय होने से वहाँ वेदना के निमित्त मिलते ही रहते हैं। शरीर में कोढ़, खाज और खाँसी आदि अनेक रोग युगपत् होते ही रहते हैं। भूख-प्यास तो उनकी ऐसी तीव्र होती है कि उन्हें सर्व का भक्षण-पान करने की इच्छा होती है। उन्हें यहाँ कि मिट्टी का भोजन मिलता है; परन्तु वह मिट्टी ऐसी होती है कि यदि वह यहाँ आये तो उसकी दुर्गंध से कितने ही कोसों तक के मनुष्य मर जायें। शीत-उष्णता तो वहाँ ऐसी होती है कि लाख योजन का लोहे का गोला भी उससे भस्म हो जायेगा। उनमें से कुछ नरकों में अत्यन्त शीतता है और कुछ में अत्यन्त उष्णता है। वहाँ की पृथ्वी शस्त्र से भी महातीक्ष्ण कण्टकों के समूह से भरी हुई है। उस पृथ्वी के वनों के पेड़ शास्त्र की धार जैसे पाक्षों से हरे हुए हैं; जिसका स्पर्श होते ही शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायें। ऐसे जलसहित तो वहाँ की नदियाँ हैं, तथा जिससे शरीर दग्ध हो जाये ऐसी प्रचंड वहाँ की वायु है। वे नारकी लोग एक-दूसरे को अनेक प्रकार से दुःखी करते

हैं, कोल्हू में पेलते हैं, शरीर के टुकड़े-टुकड़े करते हैं, हंडों में उबालते हैं, कोड़े मारते हैं तथा धधकते हुए लोहे का स्पर्श कराते हैं—इत्यादि वेदनाएँ परस्पर उत्पन्न करते हैं। तीसरे नरक तक तो असुरकुमार नाम के देव स्वयं जाकर पीड़ा देते हैं और परस्पर लड़ाते हैं।'' (पृष्ठ ७०)

❀ ''अघातिकर्मों के उदय के निमित्त से शरीरादिक का संयोग होता है। (पृष्ठ ३०८)

[उपरोक्तानुसार कथन मोक्षमार्ग-प्रकाशक में अनेक स्थानों पर है कि अघातिकर्मों के उदय के निमित्त से बाह्य सामग्री का संयोग होता है]

❀ श्रीमद् राजचन्द्रजी इस संबंध में 'मोक्षमाला' के तीसरे पाठ में लिखते हैं कि—

''एक जीव सुन्दर पलंग पर पुष्पशय्या में शयन करता है, और एक फटी हुई गुदड़ी भी नहीं मिलती, एक भाँति-भाँति के भोजनों से तृप्त रहता है, एक को काली जुआर भी नहीं मिलती; एक अगणित लक्ष्मी के उपभोग करता है, एक फूटी कौड़ी के लिये दर-दर भटकता है; एक मिष्ट वचनों से लोगों का मन हरता है, एक गूंगे जैसा रहता है; एक सुन्दर वस्त्रालंकार से विभूषित होकर फिरता है, एक को कड़ाके की ठण्ड में ओढ़ने के लिये फटा हुआ चिथड़ा भी नहीं मिलता; एक रोगी है, एक बलवान है; एक बुद्धिमान है एक जड़मति है, एक सुन्दर नयनोंवाला है, एक अंध है; एक लूला है, एक अपंग है; एक कीर्तिमान है, एक अपयश भोगता है; एक लाखों अनुचरों पर हुक्म चलाता है, एक उतनों के ही बोल सहन करता है; एक को देखकर आनन्द होता है, एक को देखकर वमन हो जाता है; एक सम्पूर्ण इन्द्रियोंवाला है, एक अपूर्ण है; एक को दीन-दुनिया का लेशमात्र भान नहीं है और एक के दु:खों का किनारा नहीं है; एक गर्भाधान से ही खत्मा हो गया, एक जन्म लेकर तुरन्त मर गया, एक मृत पैदा हुआ, एक सौ वर्ष का वृद्ध होकर मरता है; किसी के मुख, भाषा और स्थिति बराबर नहीं है। मूर्ख राजसिंहासन पर बैठा हुआ जयजयकार से सम्मानित होता है और समर्थ विद्वान धक्के खाता है!

❀ इसप्रकार सारे जगत की विचित्रता भिन्न-भिन्न प्रकार से तुम देखते हो; उससे तुम्हें कुछ विचार आता है? ×××विचार आता हो तो कहो—वह किसके द्वारा होती है?—अपने बाँधे हुए शुभाशुभकर्मों द्वारा।''

❀ ❀ ❀

❀ और वे लिखते हैं कि—

''ज्ञानी अपना उपजीवन-आजीविका भी पूर्वकर्मानुसार करता है।'' [पृष्ठ २२२]

''स्वाभाविक किसी पुण्यप्रकारवशात् सुवर्णवृष्टि इत्यादि होते हैं—ऐसा कहना असंभवित नहीं है। [पृष्ठ २३५]

''×××मुमुक्षु को—पूर्वोपार्जित शुभाशुभ कर्मानुसार अजीविकादि प्राप्त होंगे—ऐसा विचार करके मात्र निमित्तरूप प्रयत्न करना योग्य है; परन्तु भयाकुल होकर चिन्ता, या न्यायत्याग करना योग्य नहीं है; क्योंकि वह तो मात्र व्यामोह है, वह शमन करने योग्य है। प्राप्ति शुभाशुभ प्रारब्धानुसार है।'' [पृष्ठ ४४३]

''मन की वृत्ति शुद्ध और स्थिर हो—ऐसा सत्समागम प्राप्त होना अति दुर्लभ है और उसी में यह दुषमकाल होने से जीव को उसका विशेष अंतराय है। जिस जीव को प्रत्यक्ष सत्समागम का विशेष लाभ हो, वह महत्पुण्यवानपना है। [पृष्ठ ४६०]

❀ जैनसिद्धान्त-प्रवेशिका में पुण्य-पाप की व्याख्या निम्नानुसार की है—

प्रश्न ३३६: पुण्यकर्म किसको कहते हैं ?

उत्तर ३३६: जो जीव को इष्ट वस्तु की प्राप्ति करावे।

प्रश्न ३३७: पापकर्म किसको कहते हैं ?

उत्तर ३३७: जो जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति करावे।

—इसप्रकार अनेक प्रमाणभूत आधारों से यह बात सिद्ध है कि जीव को वर्तमान में इष्ट-अनिष्ट सामग्रियों का संयोग पूर्व के पुण्य-पापकर्म के उदयानुसार होता है—जीव के वर्तमान प्रयत्न से नहीं। कोई जीव धर्मात्मा-गुणवान होने पर भी यदि पूर्व के पुण्य न हों तो उसे लक्ष्मी आदि का संयोग नहीं होता; और गुणहीन जीव को भी पूर्वपुण्य के कारण लक्ष्मी आदि का संयोग होता है। इसलिये बाह्य सामग्री पूर्व के पुण्य-पापकर्म का फल है।

* श्री जैनदर्शन-शिक्षणवर्ग *

सोनगढ़ में प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश के समय विद्यार्थियों के लिये जैनदर्शन-शिक्षणवर्ग खोला जाता है, उसी प्रकार इस वर्ष भी खोला गया था। इस वर्ग की शिक्षण-शैली देखकर अनेक लोग प्रभावित होते हैं। इस वर्ष शिक्षणवर्ग में करीब १५० विद्यार्थी आये थे और वर्ग के चार विभाग किए गये थे। सबसे उत्तम श्रेणी (तीसरी श्रेणी) में मोक्षमार्ग-प्रकाशक, उपादान-निमित्त के दोहे तथा जैन सिद्धान्त-प्रवेशिका चलती थी, मध्यम श्रेणी (दूसरी श्रेणी) में द्रव्यसंग्रह तथा जैन सिद्धान्त-प्रवेशिका चलती थी, और बालवर्ग में जैन बालपोथी तथा जैन सिद्धान्त-प्रवेशिका चलती थी। वर्ग का शिक्षण करीब २२ दिन तक चला था; पश्चात् परीक्षा ली गई थी और विद्यार्थियों में १७५ रुपये की पुस्तकें पारितोषिक रूप में बाँटी गई थीं। इसबार की परीक्षा के प्रश्नपत्र इसी अंक में छापे जा रहे हैं और उनके उत्तर अगले अंक में दिये जायेंगे। बालवर्ग की परीक्षा मौखिक ली गई थी। परीक्षा में विशेष नम्बर प्राप्त करके उच्च दर्जे में उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियों के नाम यह हैं:—

तीसरी श्रेणी (उत्तम श्रेणी)

(१) जगदीशचंद्र नवलचंद्र शाह, बम्बई नंबर ९४
(२) रसिकलाल धरमशी मणियार, वढवाण नंबर ९२
(३) महेन्द्रकुमारजी पाटनी, किशनगढ़ नंबर ९१
(४) वकील शिवलाल देवचंद्र दोशी, राजकोट नंबर ९०
(५) जेठालाल चुन्नीलाल वकील, राजकोट, नंबर ८९

दूसरी श्रेणी (मध्यम श्रेणी)

(१) गुणवंतराय मनसुखलाल शाह, पोलारपुर, नंबर ९०
(२) रजनीकान्त जसराजभाई शाह, अहमदाबाद, नंबर ८२
(३) हरीन्द्र जराजभाई शाह, अहमदाबाद, नंबर ८०
(४) मनुसखलाल कपूरचंद दोशी, वडिया, नंबर ७९
(५) वाडीलाल मनसुखलाल शाह, गोरडका, नंबर ७२

प्रथम श्रेणी (अ तथा ब)

(१) चंदूलाल राघवजी, बरवाला, नंबर ९९

(२) अंबालाल गुलाबचंद, गुजरवरदी, नंबर ९७
जयसुखलाल जगजीवन, वांकानेर, नंबर ९७
(३) जयंतीलाल शांतीलाल, बम्बई, नंबर ९६
(४) बलवंतराय टपुलाल, वडिया, नंबर ९५
(५) मनहरलाल उत्तमचंद, वडिया, नंबर ९४
(६) धीरजलाल रायचंद, राणपुर, नंबर ९३
सतीशचंद्र शांतिलाल, सोनगढ़, नंबर ९३
(७) भूतपराय नागरदास, भावनगर, नंबर ९२
(८) प्रतापदान चंद्रदान, पोलापुर, नंबर ९१

श्री सनातन जैन शिक्षणवर्ग, सोनगढ़

परीक्षा-वर्ष नववाँ

[प्रथम श्रेणी]

[समय : प्रातः ९ से ११] [ता. १-६-५३ सोमवार]

प्रश्न १— सात तत्त्वों के नाम लिखो और उन सात तत्त्वों में मिथ्यादृष्टि जीव अनादि से कैसी-कैसी भूल करता है, वह स्पष्टतापूर्वक बतलाओ। (नं. २८)

प्रश्न २— किन्हीं चार की व्याख्या लिखो—
(१) अगृहीत मिथ्यादर्शन, (२) कुधर्म, (३) गृहीत मिथ्याज्ञान, (४) अनेकान्त, (५) कुगुर, (६) गृहीत मिथ्याचारित्र (७) सम्यक्दर्शन। (नं. १२)

प्रश्न ३— किन्हीं पाँच के शब्दार्थ लिखो—
(१) वीतराग विज्ञान, (२) कुबोध, (३) श्रुत, (४) भेदज्ञान, (५) कुलिंग, (६) भावहिंसा, (७) उपयोग, (८) उपलनाव। (नं. १०)

प्रश्न ४— किन्हीं पाँच की व्याख्या लिखो—

(१) गुण, (२) धर्मद्रव्य, (३) अगुरुलघुत्वगुण, (४) आहारवर्गणा, (५) द्रव्य, (६) प्रमेयत्वगुण, (७) आहारक शरीर। (नं. २०)

प्रश्न ५— किन्हीं चार के उत्तर लिखो—

(१) जीव शरीररूप क्यों नहीं हो सकता? (२) पाँच शरीरों के नाम लिखो। (३) एक द्रव्य में एकसाथ कितनी अर्थ-पर्यायें होती हैं? (४) त्रिकाल स्वभावव्यंजन पर्याय किन-किन द्रव्यों के होती हैं? (५) किस जीव के अधिक से अधिक शरीर होते हैं और वे कौन-कौन से? (६) द्रव्यों में आकार किस कारण होते हैं? (नं. १२)

प्रश्न ६— निम्नोक्त पदार्थ द्रव्य हैं, गुण हैं या पर्याय हैं—वह बतलाओ—

(१) सम्यग्दर्शन, (२) प्रकाश, (३) द्वेष, (४) वस्तुत्व, (५) परमाणु, (६) संगीत, (७) चेतना, (८) चलना, (९) त्रिभुज।

(अ) उपरोक्त पदार्थों में जो द्रव्य हो, उसका विशेष गुण लिखो।

(ब) जो गुण हो, वह किस द्रव्य का, किस जाति का (सामान्य या विशेष) गुण है, वह बतलाओ।

(क) और जो पर्याय हो, वह किस द्रव्य की कैसी पर्याय (व्यंजन-पर्याय या अर्थ-पर्याय) है, वह लिखो। (नं. १८)

[—इन प्रश्नों के उत्तर अगले अंक में पढ़िये।]

श्री सनातन जैन शिक्षणवर्ग, सोनगढ़

परीक्षा-वर्ष नववाँ

दूसरी श्रेणी (मध्यम श्रेणी)

[समय: प्रात: ९ से ११] [ता. १-६-५३, सोमवार]

प्रश्न १— जीव के नव अधिकारों के नाम लिखकर उनमें से भोक्तृत्व और अमूर्तत्व अधिकार में जिस-जिस नय से कथन किया गया हो, वह लिखकर वह प्रत्येक नय क्या बतलाता है, वह समझाओ। (नं. १८)

प्रश्न २— (क) उपयोग की व्याख्या लिखो।

(ख) कोई जीव परोपकारी कार्य करने में शरीर का उपयोग कर सकता है या नहीं, वह कारणसहित समझाओ।

(ग) सम्यग्दर्शन और चक्षुदर्शन में क्या अन्तर है ? दोनों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की तुलना करो।

(घ) एक विद्यार्थी ने दूसरे विद्यार्थी के पास से मानस्तंभ-प्रतिष्ठा के समय जो पत्रिका निकली थी उसका हाल सुना। फिर उसने वह पत्रिका अपने हाथ में लेकर मानस्तंभ का चित्र देखा। उससे वह मानस्तंभ सम्बन्धी विशेष विचार करने लगा। इसमें श्रवण, चित्र का देखना, और विशेष विचार में कौन-कौन से उपयोग हुए वह क्रमशः लिखो। (नं. १८)

प्रश्न ३— निम्नोक्त में से किन्हीं भी पाँच के उत्तर कारणसहित लिखो—

(१) चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन-दोनों एक ही समय हो सकते हैं ?

(२) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान—दोनों एक ही काल में हो सकते हैं ?

(३) एक द्रव्य में दो व्यंजनपर्यायें एक ही समय में हो सकती हैं ?

(४) अस्तित्व गुण और स्थितिहेतुत्व—दोनों एक द्रव्य में एक ही साथ होते हैं ?—यदि होते हैं तो किस द्रव्य में ?

(५) गति (गमन) और गतिहेतुत्व-दोनों एक ही द्रव्य में होते हैं।

(६) मनुष्य चलता है, उस समय उसकी पछाईं उसके साथ चलती है ?

(७) मानस्तंभ के दर्शन चक्षु से फिर वह चक्षुदर्शन है ? (नं. १५)

प्रश्न ४— निम्नोक्त पदार्थों में कौन-सा अभाव है, वह कारणसहित समझाओ—

(१) सिद्धत्व का संसारदशा में, (२) घड़ी की सुइयां और कालाणु के बीच, (३) मतिज्ञान का श्रुतज्ञान में, (४) जीव ने विकार किया इसलिये कर्मबंध हुआ। उसमें विकार और कर्म के बीच, (५) जड़ इन्द्रियाँ और जड़ मन। (नं. १५)

प्रश्न ५— निम्नोक्त पदार्थ द्रव्य हैं, गुण हैं, या पर्याय हैं—वह बतलाओ।

(१) चरपराहट, (२) अचक्षुदर्शन, (३) सप्ताह, (४) समुद्घात, (५) चेतन, (६) अवगाहनहेतुत्व, (७) मृगजल, (८) सूक्ष्मत्व।

(क) उपरोक्त पदार्थों में जो द्रव्य हो, उसका विशेष गुण लिखो।

(ख) जो गुण हो, वह किस द्रव्य का और कैसा गुण है, वह बतलाओ।

(ग) जो पर्याय हो, वह किस द्रव्य के किस गुण की विकारी या अविकारी और अर्थ या व्यंजनपर्याय है, वह बतलाओ। (नं. २०)

प्रश्न ६— (अ) किन्हीं चार की व्याख्या लिखो—

(१) वर्गणा, (२) निश्चयनय, (३) अवांतरसत्ता, (४) आहार-वर्गणा,

(५) लोकाकाश, (६) चक्षुदर्शन।

(ब) [१] बुखार उतर गया, [२] एक जीव ने क्रोध मिटाकर क्षमा धारण की, इन दो में उत्पाद, व्यय, ध्रुव समझाओ। (नं. १४)

(—इन प्रश्नों के उत्तर अगले अंक में पढ़िये।)

श्री सनातन जैन शिक्षणवर्ग, सोनगढ़

परीक्षा-वर्ष नववाँ

तीसरी श्रेणी (उत्तम श्रेणी)

[समय : प्रातः ९ से ११] [ता. १-६-५३, सोमवार]

प्रश्न १— भावलिंगी मुनि किन्हें कहते हैं, उनके अंतरंग और बाह्य चिह्न क्या हैं, और उनकी बाह्य प्रवृत्ति कैसी होती है, उस संबंध में २० पंक्तियों का निबंध लिखो। (नं. २०)

प्रश्न २— वीतरागविज्ञानरूप प्रयोजन की सिद्धि श्री अरिहंतादिक द्वारा किसप्रकार होती है, वह कारणसहित समझाओ।

या

मंगल करनेवाले को जिनशासन के भक्त देवादिक सहाय में क्यों निमित्त नहीं होते, उसके कारण लिखो। (नं. १६)

प्रश्न ३— समर्थकारण की व्याख्या लिखो, और (अ) एक जीव को वर्तमान में औपशमिक सम्यग्दर्शन प्रगट होता है उसमें, तथा (ब) महाविदेहक्षेत्र में विराजमान एक मुनि

को अनंत-चतुष्टय प्रगट होता है उसमें,—उस व्याख्या में आये हुए नियम स्पष्ट रीति से समझाओ। (नं. १६)

प्रश्न ४— निम्नोक्त मान्यतावाले किस अभाव का अस्वीकार करते हैं, वह कारणसहित समझाओ। (किन्हीं भी चार के उत्तर लिखें।)

(१) वर्तमान में एक जीव को अज्ञान वर्तता है, क्योंकि उसे कुगुरु का उपदेश मिला है।

(२) इस समय एक जीव को मिथ्यात्व वर्त रहा है, उसे दूर करके वह कभी सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं कर सकेगा।

(३) पूर्वकाल में एक जीव ने बहुत विकार किया था, इसलिये वह वर्तमान में भी विकार करता है।

(४) केवली भगवान के चार अघातिकर्म शेष हैं, इसलिये वे सिद्धदशा को प्राप्त नहीं कर सकते।

(५) वायु का झोंका आने से वृक्ष के पत्तों में हलन-चलन हुआ, इसलिये उनकी परछाई पड़ी।

प्रश्न ५— निम्नोक्त कथन किस नय का है, और उसमें निश्चय-व्यवहार समझाओ। (किन्हीं भी चार के उत्तर लिखें।) (नं. १६)

(१) कोई जीव प्रबल कर्म के उदय के कारण ग्यारहवें गुणस्थान से च्युत होकर मिथ्यात्वी हो जाता है।

(२) जीव पुरुषार्थ द्वारा अनंतवीर्य प्रगट कर सकता है।

(३) भगवान की दिव्यध्वनि जीवों को तत्त्वज्ञान का कारण है।

(४) अज्ञानी जीव अनादिकाल से अपने अज्ञान एवं मोहभाव के कारण संसार में परिभ्रमण करता है।

(५) श्री सीमंधर भगवान के दर्शनों से मुझे शुभभाव हुआ।

(६) धर्मास्तिकाय के अभाव के कारण सिद्ध भगवान अलोक में नहीं जा सकते।

(७) नरकगति नामकर्म के कारण श्रेणिक राजा नरक में गये।

प्रश्न ६— (अ) निम्नोक्त में से किन्हीं भी चार की व्याख्या लिखो। (नं. ८)

अवग्रह, मंगल, मोक्षमार्ग, उपादानकारण, संक्लेश, परिणाम, प्रध्वंसाभाव, चेतना।

निम्नोक्त पंक्तियों का अर्थ समझाओ— (नं. ८)

उपादान बल जहँ तहाँ, नहि निमित्त को दाव,
एक चक्र सों रथ चले, रवि को यहै स्वभाव।
सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कौन,
ज्यों जहाज परवाह में तिरे सहज बिन पौन॥

(—इन प्रश्नों के उत्तर अगले अंक में पढ़िये।)

शासनप्रभावना का धन्य दिवस!

राजगृही नगरी में विपुलाचल पर्वत पर महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा सर्वप्रथम धर्मामृत की वर्षा श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन हुई और उसकी पावन धारा को झेलकर छियासठ दिन से तड़पते हुए भव्यजीवों के हृदय शांत हुए।

—श्रावण कृष्णा प्रतिपदा... यह वीरशासन-प्रवर्तन का धन्य दिन है। इस धन्य दिवस को ही इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) महावीर भगवान के समवशरण में आये... दिव्य मानस्तंभ को देखते ही भगवान के अद्‌भुत धर्मवैभव के निकट उनका मान गल गया... और वे भगवान के गणधर हुए।

धन्य है... दिव्यध्वनि प्रदान करनेवाले और उसे झेलनेवाले पवित्र आत्माओं को! धन्य है... उनके पवित्र भावों को! धन्य है... उस पावन क्षेत्र को! और धन्य है उस मंगलकाल को!

परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का
अपूर्व लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों की—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार प्रवचन भाग १	६)	भजनमाला	
समयसार प्रवचन भाग २	५)	(अजमेर भजन-मण्डली की)	
समयसार प्रवचन भाग ३	४)	मूल में भूल	
समयसार (हिंदी)		मुक्ति का मार्ग	
(मूल संस्कृत टीका सहित)	१०)	अनुभवप्रकाश	
प्रवचनसार हिंदी		अष्टपाहुड़	३)
(मूल संस्कृत टीका सहित)	५)	चिद्विलास	१)
आत्मावलोकन	१)	दसलक्षणधर्म	)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें	१)	जैन बालपोथी	)
द्वादशानुप्रेक्षा	२)	सम्यक्दर्शन	२)
अध्यात्मपाठसंग्रह	५)	स्तोत्रत्रयी	)
समयसार पद्यानुवाद	)	भेदविज्ञानसार	२)
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	)	पंचमेरु पूजन	)
'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक मूल्य	३)		
आत्मधर्म फाइलें १-२-३-५-६-७ वर्ष	प्रत्येक का ३)		

(डाकव्यय अतिरिक्त)

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

: मुद्रक : जमनादास माणेकचंद रवाणी, अनेकान्त मुद्रणालय, वल्लभ-विद्यानगर
: प्रकाशक : श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये-जमनादास माणेकचंद रवाणी